# अशोक वाजपेयी की कविता का विश्लेषणात्मक अध्ययन

## (AN ANALYTICAL STUDY OF ASHOK VAJPEYI'S POETRY)

*Thesis*

*Submitted to*

**COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY**

*For the Degree of*

**DOCTOR OF PHILOSOPHY**

**In**

**Hindi**

**Under the faculty of Humanities**

*By*


**लीना सामुवल**

**LEENA SAMUEL**

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

KOCHI - 682 022


DECEMBER 2005

**DEPARTMENT OF HINDI**
**COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY**
**COCHIN - 682 022, KERALA, INDIA**

**Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN**
Dean, Faculty of Humanities
Cochin University of Science and Technology

Phone: (Off) 0484-2575954
(Res) 0484-2424004
Mobile: 9447667313

# *Certificate*

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled **"Ashok Vajpayi ki Kavitha ka Vishleshanatmak Adhyayan"** is an authentic record of research work carried out by Leena Samuel under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, in partial fullfillment of the requirements for the degree of Doctor of Philosophy in Hindi and that no part thereof has been included for the award of any other degree.

**Dr. A. Aravindakshan**
Professor
Supervising guide

Place : KOCHI - 22
Date : 31/12/2005

# ***Declaration***

I hereby declare that the thesis entitled **"Ashok Vajpayi ki Kavitha ka Vishleshanatmak Adhyayan"** is the bonafide report of the original work carried out by me under the supervision of Dr. A. Aravindakshan at the Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part there of has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

Place : KOCHI - 22
Date : 31/12/2005

**Leena Samuel**

# भूमिका

अशोक वाजपेयी समकालीन हिन्दी कविता के प्रमुख कवि हैं। कवि के अलावा आलोचक के रूप में भी उन्होंने अपनी विशिष्ट भूमिका निभायी है। उनकी रचनात्मकता का तीसरा आयाम उनके संपादक होने को लेकर है। अशोक वाजपेयी के महत्व का एक चौथा पक्ष भी है जो उनके संस्कृतिकर्मी होने के कारण है। उनकी प्रासंगिकता का पाँचवाँ पक्ष है कि वे अपनी रचनात्मकता के माध्यम से हिन्दी की सीमा के बाहर भी प्रतिष्ठित हैं। इस तरह के बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी अशोक वाजपेयी के साहित्य अकादमी पुरस्कृत काव्य संकलन 'कहीं नहीं वहीं' को आधार बनाकर एम.फिल के लघु शोध प्रबन्ध लिखने का अवसर मुझे मिला था। उसी समय दो तथ्यों ने मुझे आकृष्ट किया था - एक - अशोक वाजपेयी की प्रातिभिक क्षमता की बहुविध छवियाँ, दो - समकालीन कविता की मुख्य धारा से भिन्न तरह की कविता लिखने का उनका अंदाज़। इन दोनों तथ्यों ने मुझे आकृष्ट किया था। सच तो यह है कि यह आकर्षण सामान्य नहीं था। इसलिए पी.एच.डी. केलिए मैं ने उनकी कविता समग्रता को विषय बनाने का निर्णय लिया।

हिन्दी के समकालीन साहित्य-परिदृश्य में अशोक वाजपेयी जितने प्रतिष्ठित हैं, जितनी उनकी स्वीकृति है उतना ही उनके विपक्ष में भी प्रतिक्रियाएँ उपलब्ध हैं। अर्थात् पक्ष और विपक्ष में समान ढंग से वाद - विवाद चलते रहते हैं।

इसके कई कारण हैं। अधिकतर कारण साहित्येतर हैं। इसलिए उनकी कविताओं को इन तमाम वाद-विवादों से मुक्त करके देखने की इच्छा भी मेरे मन में उत्पन्न हुई थी। प्रस्तुत विषय-चयन के पीछे यह इच्छा प्रबल है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। मेरी इच्छा और अनिच्छा का उनकी कविता के तथ्य के साथ कोई संबंध नहीं। अपने लघु शोध प्रबन्ध-लेखन के दौरान ही मैं ने महसूस किया था कि अशोक वाजपेयी की कविता सामान्य कविताओं से भिन्न है। समकालीन हिन्दी कविता प्रबल रूप से सामाजिक संसक्तियों को स्थान देने वाली है। सामाजिक संसक्तियाँ अंततः किसी न किसी मात्रा में हमारे सामान्य जीवन के किन्हीं तथ्यों से संबंध रखती ही हैं। ऐसी कविताओं से एक सीधा संवाद हमारे लिए सहज हो जाता है। उन कविताओं के बीच हम अपने कई संघर्षों को रख पाते हैं। एक तरह का तादात्म्य बोध भी उसे कहा जा सकता है। लेकिन ऐसी कविताओं के बीच अशोक वाजपेयी की कविताएँ हैं, जिनकी बनावट और बुनावट सरल नहीं है, भिन्न अभिरुचि की है। प्रथम वाचन के अवसर पर ही हमें यह आभास मिलता है की सघन संवेदना की अगाधताओं से युक्त अशोक वाजपेयी की कविताओं का लोक और भूगोल अलग है। यह अवबोध प्रत्येक वाचन के अवसर पर त्वरित होने लगता है। अलग है, भिन्न है कहने से उनकी कविता हमारे लिए विस्तृत नहीं हो सकती। इसलिए मेरे लिए आवश्यक सा प्रतीत हुआ कि इस विस्तृत अध्ययन के दौरान यह देखें कि अशोक वाजपेयी का क्या योगदान है। अतः यह शोध प्रबन्ध अशोक वाजपेयी के कविता के योगदान का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है। पहला अध्याय अशोक वाजपेयी के बहुमुखी व्यक्तित्व का अध्ययन है। एक तरह से उनके व्यक्तित्व के विकास का लेखा -जोखा ही इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। उसमें उनकी प्रतिभा का क्रमिक विकास अनुभव किया जा सकता है। अपने पथ को ढूँढ़ने की बेचैनी से युक्त उनका व्यक्तित्व अपने में अनूठा है। कविता में से किस तरह अपने लोक को बसाते हैं, किस तरह उसे विकसित करते हैं, उनकी विशेष अभिरुचियों, विशेष आकर्षणों, विशिष्ट व्यक्तियों से उनके गहन संबन्धों, उन संघर्षों में निहित मूल्यों और उनकी कलात्मताओं का विस्तृत विश्लेषण इस अध्याय में दिया गया है। इसके अलावा उनकी तमाम रचनाओं का परिचयात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। उनके बहुविध कार्यों के परिवेश का परिचय भी दिया गया है।

दूसरा अध्याय मानवीय संबन्धों पर केन्द्रित है। वस्तुतः यह एक सपाट विषय है। कविता केलिए अशोक वाजपेयी ने इसलिए इस विषय को चुना है कि उनकेलिए मानवीय संबंध अपनी विषय सीमा के बाहर बहुत कुछ अभिव्यंजित करने का सृजनात्मक साधन है। पारिवारिक व्यक्तियों के अलावा अपने मित्रों, जो कलाकार हैं, पर उन्होंने कविताएँ लिखीं। पर ये कविताएँ सिर्फ व्यक्तिकेन्द्रित नहीं है। मूल्य केन्द्रित हैं, संस्कृति केन्द्रित हैं, समाज केन्द्रित हैं। बहु सारे 'स्पेस' ये कविताएँ छोड रही हैं। समकालीन कविता के रचना परिदृश्य में इसका मूल्य बहुविध है।

तीसरा अध्याय अशोक वाजपेयी की सामाजिक संसक्तियों पर केन्द्रित कविताओं के बारे में है। प्रकट रूप से अशोक वाजपेयी को हम सामाजिकता के

रचनाकार नहीं मान सकते हैं। इसका कारण यह है कि सामाजिक विषयों की तात्कालिकता पर उन्होंने कविताएँ नहीं लिखी हैं। लेकिन उनकी बहुत सी कविताओं में सामाजिक संसक्तियों के विविध रंग मिलते हैं। इस अध्याय में इन्हीं विषयों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

चौथा अध्याय मृत्यु संबंधी कविताओं पर केन्द्रित है। मृत्यु की चर्चा साहित्य में हमने अस्तित्ववाद के दौर में अधिक सुनी थी। पर अशोक वाजपेयी की अनुभूति को अस्तित्ववाद के संदर्भ में हम परिभाषित नहीं कर सकते हैं। मृत्यु संबंधी कविताएं मृत्यु पर केन्द्रित नहीं हैं। वे मृत्यु के बाहर जीवन पर केन्द्रित कविताएँ हैं। इन कविताओं का महत्व है। संभवतः इतनी गंभीरता अन्य कवियों ने बरती नहीं है। प्रस्तुत अध्याय मृत्यु और जीवन पर केन्द्रित इन कविताओं को लेकर रचित है।

पाँचवाँ अध्याय कवि की भाषिक संरचना पर केन्द्रित है अशोक वाजपेयी केलिए कविता-भाषा प्रयोग की वस्तु नहीं है। भाषा की सृजनशीलता से अशोक वाजपेयी अच्छी तरह परिचित हैं। भाषा की सृजनशीलता और कविता के रूपायन को इस अध्याय में विश्लेषण का विषय बनाया गया है।

उपसंहार में शोध प्रबंध संबंधी मूल दृष्टिकोणों को आकलित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी कविता में ही नहीं, भारतीय कविता में अशोक वाजपेयी की भूमिका को रेखांकित करने का कार्य भी इसमें किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो. डॉ. ए. अरविन्दाक्षन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ। उनके बहुमूल्य सुझावों तथा प्रेरणा वर्द्धक निर्देशन से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी हूँ।

प्रयाग शुक्ल, प्रभात त्रिपाठी, नन्दकिशोर आचार्य, के. सच्चिदानन्दन जैसे वरिष्ठ साहित्यकारों के प्रति मैं सादर अपना आभार प्रकट करती हूँ। अशोक वाजपेयी की कविता की अन्दरूनी तहों को मापने और व्यापने में इन साहित्यकारों से मुझे बहुत सहायता मिली है। उनसे साक्षात्कार का जो मौका मुझे मिला था, उससे मैं बहुत लाभान्वित हुई थी।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा प्रो. डॉ. पि.ए. षमीम अलियार के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ।

हिन्दी विभाग के सभी अध्यापकों के सलाह एवं सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

कोच्चिन विश्वविद्यालय के बाहर के मेरे प्रिय अध्यापकों में डॉ. वी.जी. गोपालकृष्णन, डॉ. सि. विश्वनाथन, डॉ. सुजा आदि के प्रोत्साहन एवं प्रेरणा ने मुझे शक्ति दी है, इन अध्यापकों के प्रति मैं हमेशा आभारी हूँ।

विभाग के मेरे प्रिय मित्रों को भी मैं इधर याद करती हूँ। उनके स्नेह प्रोत्साहन एवं सुझाव केलिए मैं उन लोगों से विशेष आभारी हूँ। सोलजी, राजेश्वरी, श्रीजा, प्रिया आदि से मैं अपना प्यार प्रकट करती हूँ।

प्रबंध लेखन के दौरान छात्रावास अतुल्या के मेरे प्रिय मित्रों में राधिका, माया, निषा, रीना आदि के प्रति में विशेष रूप से आभारी हूँ। वैज्ञानिक विषयों पर शोध करने वाले उनको अशोक वाजपेयी की कविता का अन्तःस्थल ने बहुत आकृष्ट किया था। कमरों में हुई चर्चाओं ने ज़रूर मुझमें आत्मविश्वास भर दिया था।

मेरे हर कदम पर प्रार्थना और प्रोत्साहन के द्वारा मेरे साथ देनेवाले माँ-बाप और भाई-बहनों से मैं सर्वथा कृतज्ञ हूँ।

सर्वोपरी मैं ईश्वर की कृपा का ऋणी हूँ।

लीना सामुवल

# अनुक्रम


**अध्याय - 1 : अशोक वाजपेयी का रचना व्यक्तित्व** 1 - 44

आधुनिक कविता और अशोक वाजपेयी
समकालीन कविता और अशोक वाजपेयी
सांस्कृतिक समन्वयक की भूमिका
संपादन का सौन्दर्यशास्त्र
साहित्य की सौन्दर्यात्मक धारणाओं का विकास
कवि भूमिका।

**अध्याय - 2 :अशोक वाजपेयी की कविता में मानवीय संबंधों की स्थितियाँ।** 45 - 85

मानवीय संबंधों का कविता-पक्ष
घर, परिवार और पड़ोस की कविता
कला की कभी न बुझनेवाली दीपशिखाएँ
ऐन्द्रियता से आध्यात्मिकता का स्पर्श
प्रेम का नया व्योम।

**अध्याय - 3 : अशोक वाजपेयी कविता में सामाजिक संसक्ति** 86 - 128

सामाजिक संसक्तियों का परिवर्तित रूप.
अशोक वाजपेयी की कविता की सामाजिकता
राजनैतिक संकेतों की सामाजिकता
सामाजिक संसक्तियों के केन्द्र में उभरता मनुष्य का बिंब

**अध्याय - 4 : अशोक वाजपेयी की कविता में मृत्युबोध और उसका समकालीन संदर्भ** 129 - 180

अशोक वाजपेयी में मृत्युबोध का उत्स और विस्तार
मृत्युबोध का दार्शनिक पक्ष
मृत्युबोध की कवितात्मक अभिव्यक्ति
उम्मीद और जिजीविषा की कविता
स्मृतियों का शाब्दिक विन्यास।

**अध्याय - 5 : अशोक वाजपेयी की कविता की भाषिक सृजनात्मकता का अध्ययन।** 181 - 214

काव्यभाषा

समकालीन कविता की भाषा

अशोक वाजपेयी की कविता की भाषिक सृजनात्मकता

कविता के विकल्प

प्रकृति की प्रतीकात्मक उपस्थिति।

**उपसंहार** 215 - 222

**संदर्भ ग्रंथ सूची** 223 - 232

.....🕮.....

अध्याय - 1

# अशोक वाजपेयी का रचना व्यक्तित्व

कविता की हमारी परंपरा प्राचीन और बृहद् है। कविता की प्राचीन परंपरा से आज की कविता का भले ही कोई संबंध न हो फिर भी कविता अंततः अपनी प्राचीन परंपरा से शतः अलग है। किसी न किसी मात्रा में, किसी न किसी रूप में यह अपनी पूर्वी परंपरा से विकसित करके अपने में लीन रहने - करने का रचनात्मक कार्य करती रहती है।

कविता प्रत्येक युग में अपनी ज़मीन तलाशती है। यह एक नदी के प्रवाह के समान है जो नित्य नया रूप धारण कर लेने पर भी गहराई में हमेशा अतीत से जुड़कर, वर्तमान से होकर भविष्य की ओर प्रवाहित है। नदी के समान समय और स्थान के आधार पर कविता ज़रूर अपना रुख बदलती रही है। भारतेन्दु से लेकर द्विवेदी, गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर, अज्ञेय, मुक्तिबोध जैसे कवियों के हाथों से हिन्दी कविता की यह अजस्र धारा असंख्य सजग एवं सक्रिय कवियों से होकर प्रवाहित है। मानवीय यथार्थ के वैविध्य का उद्घाटन इन कवियों के माध्यम से होता रहा। इसलिए कविता निरंतर नवीकृत होती गयी।

## आधुनिक कविता और अशोक वाजपेयी

आधुनिक हिन्दी कविता अपनी पूर्ववर्ती काव्यपरंपरा को आत्मसात करते हुए अपनी युगीन सच्चाई से प्रतिकृत होने के अन्दाज़ में रचित है। नयी कविता का परिदृश्य कई प्रकार की संक्रमणशील प्रवृत्तियों से युक्त रहा है। पूर्वयुगीन काव्य मनोवृत्तियों की प्रतिक्रिया के रूप में नये कवियों की कविताएँ सामने आयीं। वे स्वतंत्रयोत्तर जनमानस की विडम्बनात्मक स्थितियों का प्रयोगपरक वर्णन कर रहे थे। अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शमशेर बहादूर सिंह, श्रीकांतवर्मा, केदारनाथ सिंह जैसे कवियों की प्रखर एवं विचारोत्तेजक कविताएँ हिन्दी काव्य जगत् को गंभीर बना रही थीं। मानवीय अस्तित्व को संकट में पाकर और यांत्रिक सभ्यता को फैलते हुए देखकर नये कवि अस्तित्ववादी और व्यक्ति केन्द्रित नज़र आते हैं। नयी कविता के दौर में कविता का अंतरंग और बहिरंग पूरी तरह से बदल रहा था।

प्रयोगशील नयी कविता के दौर में ही अशोक वाजपेयी जैसे सृजनशील व्यक्तित्व का विकास हो रहा था। मध्यप्रदेश के सागर शहर में एक संभ्रांत मध्यवर्गीय परिवार में पहली संतान के रूप में सन 1941 में जनवरी 16 को उनका जन्म हुआ। बचपन से लेकर वे सर्जना के क्षेत्र में सक्रिय रहे। उनके पिता बैसवाड़े के थे। उनका पैतृक गाँव राजापुर गढ़ेवा है। उनके ताऊ आनन्द मोहन वाजपेयी सागर विश्वविद्यालय

के संस्थापक अध्यक्ष थे। बालक अशोक के लिए बच्चों की पुस्तकें लाकर वाचन की ओर उन्हें उन्मुख करने में ताऊजी की अहं भूमिका है। अशोक वाजपेयी की माँ बुन्देलखण्ड की थी। उस मातृअंचल की बोली के प्रति अशोक वाजपेयी के मन में गहरी निष्ठा है। उनके रचनाकर्म में इस बोली का स्वाभाविक सान्निध्य भी है।

भोपाल के अपने घर, सामनेवाले नाना-नानी के घर, बीचवाले सड़क की आवाजाही बचपन से इन सभियों के साथ आत्मीय संबंध बना हुआ था। यह आत्मीय स्थिति जीवन भर साथ होने की इच्छा उनमें तीव्र है और इसीलिए इससे वे कभी मुक्त नहीं हुए। यह घर और दुनिया उनकी कविता और जीवन का ही अनिवार्य पड़ोस है। बाद में उनकी कविता में एक तरह का जो स्थायी भाव सा जिस अवसाद की अभिव्यक्ति हुई है वह इस घर और आस-पड़ोस से छूटने के कारण उत्पन्न हुआ है।[1]

अध्ययन - जतन की सुविधा के होते हुए भी अशोक वाजपेयी के परिवार में किसी प्रतिष्ठित साहित्यिक परंपरा का स्रोत लक्षित नहीं होता है। इस बारे में वे स्वयं कहते है - "आज इतने बरसों बाद, लगभग चालीस बरसों तक कलम घसीटने के बाद सोचता हूँ कि क्या लेखक या कवि बनने के लिए जितनी पूँजी चाहिए उतनी लेकर इस अभियान पर निकला था? वह तो कतई नहीं जो एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में बिना किसी कविता परंपरा या संस्कार को उत्तराधिकार में पाये शुद्ध

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 13, प्र. सं. 2001

दुस्साहसिकता के चलते कवि बनने की आकांक्षा और उद्यम कर रहा हो।"[1] लेकिन साहित्य एवं साहित्यकारों से निकट संबंध रखनेवाले परिवार होने के कारण उनका बचपन साहित्यिक माहौल में गुज़रा था। इसी परिवेश में ही उनमें सृजनात्मक लेखन के प्रति उत्सुकता विकसित हुई थी।

अशोक वाजपेयी की माँ रोज़ 'रामचरितमानस' की पूजा करती थी। उनके नाना भी मानस के विशेष प्रेमी थे। उनके यहाँ से उसने नौ-दस बरस की उम्र में बिना कोई अर्थ समझे दो-तीन बार 'मानस' का अखण्ड़ पाठ किया था। नाना के यहाँ मिर्जापुर से आए एक पंडित 'मानस' की व्याख्या करते हुए शब्दों का विग्रह कर उनसे कई नए एवं अप्रत्याशित अर्थ निकालते थे। बालक अशोक वाजपेयी तभी से यह स्वीकारते हैं कि कविता शब्दों का खेल है लेकिन अत्यंत अर्थगृहीत और उसमें कई नयी अर्थाभाएँ पैदा की जा सकती है।

छोटी आयु से ही सागर की साहित्यिक गोष्ठियों में अशोक वाजपेयी ने कविता पाठ शुरू किया था। पहली तुकबन्दी गणतंत्र के स्वागत पर लिखी गयी थी। कविता के क्षेत्र में उनके सक्रिय होते समय हिन्दी कविता बौद्धिकता की जकड़ में थी। नये कवि परिवर्तित मानसिकता को नये अन्दाज़ में रचने के आदी थे जिनमें विचार और आधुनिक भावबोध का वर्चस्व था। लेकिन युवा कवि अशोक वाजपेयी

1. तिनका तिनका - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 4, प्र. सं. 1996

की कविता उस समय बौद्धिकता से दूर थी। इस समय की कविता में भावुकता का वर्चस्व था। बाद में भवानीप्रसाद मिश्र का प्रभाव पड़ना शुरू हुआ। टैगोर के प्रभाव में लिखा गया उनका प्रथम गद्यगीत ग्वालियर से निकलने वाले 'भारती' में छपा था।

बचपन में साहित्य, विशेषकर कविता एवं अन्य कलाओं के प्रति दिलचस्पी पैदा करने में गुरू लक्ष्मीधर आचार्य का बहुत बडा हाथ है। उन्हीं की प्रेरणा से उन्होंने संस्कृत पढ़ी थी। संस्कृत भाषा का अध्ययन आगे रचनाकर्म में काफी सहायक सिद्ध हुआ। गुरू लक्ष्मीधर आचार्य की आत्मीयता से 'कल्पना' पत्रिका, अज्ञेय की पुस्तकों और हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से परिचय हो गया था। इसी के साथ सुमित्रांनंतन पंत की 'अतिमा' की कविता पढ़ने, जयशंकर प्रसाद की कविता 'ले चल मुझे भुलावा देकर' को गाने, निराला के अनेक संग्रह पढ़ने - सुनने का अवसर मिला और कविता नयी संभावना की तरह उभरी। जनेऊ के अवसर पर गुरु लक्ष्मीधर आचार्य ने कुछ पुस्तकों को उपहार के रूप में दिया था जिनमें 'शेखर एक जीवनी' के दो भाग 'हरी घास पर क्षण भर', 'गीतांजली' का अंग्रेज़ी अनुवाद पतंजी के दो कविता संग्रह 'गुंजन', और 'स्वर्ण धूलि' शामिल थे। तेरह बरस की उम्र में उनकी पहली कविता 'धर्मयुग' में छपी। फिर 'सारथी', 'वसुधा' जैसी पत्रिकाओं में उनकी एकाध कविताएं प्रकाशित हुई थीं। एक कवि के रूप में उनके व्यक्तित्व के रूपायन में बहुत सारी चीज़ों का प्रभाव लक्षित होता है, जिनमें उपर्युक्त घर, पास-

पडोस, गुरु का सामीप्य आदि उल्लेखनीय हैं। साथ ही साथ अन्य साहित्यकारों की रचनाएं, उनमें स्पन्दित जीवन और उसकी अपार छवियाँ इतनी तीव्रता के साथ कविमन में प्रविष्ठ होता है कि वे पहचानने लगते हैं कि इन्हीं रचनाओं में विन्यस्त जीवन भी सत्य है। उनमें स्पन्दित शब्द उतने ही सच थे जितने फूल, पत्तियाँ, चिडियाँ या पत्थर-आंखें, हाथ या स्पर्श। कवि स्वयं इस सच्चाई का बखान करते हुए कह रहे की हैं शब्दों की इस सचाई के अहसास ने कई बार निपट एकांत में भी सचाई से कभी दूर नहीं रहने दिया।[1] इस पहचान के समानान्तर वे यह भी जानते हैं कि पुस्तकों, शब्दों के अलावा सुरों या रेखाओं या मुद्राओं में भी उतना ही रस बसती है। वहाँ से लेकर संगीत, नृत्य, चित्र आदि अशोक वाजपेयी की कविता का अनिवार्य पड़ोस हैं। संपूर्ण कलाएँ कलाकार के अन्तःस्थल से फूटनेवाली एक धारा है, जो कभी सूखती नहीं, जिसके निकट जानेवाले सभियों को नमी प्रदान कर सृजनशील है। प्रथम संग्रह से लेकर सालों के बाद अब भी यही विश्वास उन्हें बल दे रहा है। उनके ही शब्दों में "जीवन और लोगों ने जब-जब निराश किया हो कलाओं ने कभी साथ नहीं छोडा है।"[2] निजता के बंधन से व्यक्ति को मुक्ति देनेवाली कलाओं पर विश्वास बढ़ने में इस समय ने सार्थक भूमिका अदा की है। इन दिनों वे

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 7, प्र. सं. 2001
2. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 17, प्र. सं. 2001

अनेक छोटी-छोटी पत्रिकाओं के संपादक भी बने। संत्रह वर्ष के उम्र में हुए साहित्यकार सम्मेलन में भी उन्होंने भाग लिया जहाँ वे उस उम्र के एकमात्र युवा लेखक थे।

संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि कलाओं की संस्कृति एवं उसका महत्व, भारतीय संदर्भ में विशिष्ट है। ये कलाएँ हमारे अतीत की याद दिलानेवाली हैं। कभी कभार मनुष्यता की हैसियत पर उन्हें बिठाती भी है। धरती को, आकाश को, सूर्य-चन्द्र आदि को, प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु को कलाकार के कुशल हाथों से जान मिल जाता है। समकालीन दौर में आकर कलाओं से पायी जानेवाली आत्मीयता की ओर लोग आँखें मूँद लेते है ओर कलाओं की स्थिति लगभग नगण्य ही है। भारतीय परंपरा में ही नहीं संपूर्ण मानवीय परंपरा में आज के जैसा कोई संकटापन्न समय कभी आया ही नहीं था। कला की विशिष्टता को आदर मिलने लायक माहौल नहीं है। उत्तराधुनिक दौर में मनुष्य उत्तराधुनिक औजारों से बुरी तरह घायल होते जा रहे है। इन्हीं घायल मनुष्यों को दिलासा देने केलिए सक्षम कलाएँ मानव से बहुत दूर है। मानव संस्कृति के रूपायन में कला की अहं भूमिका रही है। आज कला का दायित्व भी भारी हो गया है। लेकिन कला और कलाकार को उचित आदर नहीं मिल रहा है। सांस्कृतिक संकट के इस चेहरे को गुणात्मक दृष्टि से अशोक वाजपेयी उकेरते हैं। सारा मोम बुझ जाने के बाद भी निष्कम्प जलती रहनेवाली दीपारीखाओं पर, उन

कलाकारों पर अशोक वाजपेयी भरोसा रखते हैं। ये उनके लिए उम्मीद हैं। कला अवसाद की पकड से निपट एकांत से कवि को, संपूर्ण मानवजाती को बचाने वाली निष्कम्प दीपशिखा है।

अशोक वाजपेयी जिस समय सागर विश्वविद्यालय में पढ़ता था उस समय वहाँ नयी कविता की नयी प्रवृत्ति को लेकर काफी चहलकदमी मच रही थी। अशोक वाजपेयी के जीवन का यह महत्वपूर्ण समय है क्योंकि प्रभाव, पठन, वाचन, एवं लेखन का क्षेत्र विस्तृत हो रहा था। कविता के क्षेत्र में सक्रिय रूप से प्रवेश करनेवाले अशोक के लिए नयी कविता एक व्यापक आन्दोलन था। नये कवियों की कविताओं में अभिव्यक्त जीवन और यथार्थ के विभिन्न पहलुओं से तादात्म्य प्राप्त करने का अवसर उन्हें मिला था। जिसने उनके कवि व्यक्तित्व को विकसित करने में योग भी दिया था।

अशोक वाजपेयी जैसे रचनाशील व्यक्तित्व में बहुत बाद में यह पहचान जगी कि उस रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में अपना रहस्य, अपनी पवित्रता और अपनी कविता थी। लेकिन इस पहचान के पूर्व नयी कविता अन्दोलन और नये कवियों ने इसके लिए सार्थक भूमिका निभायी हैं। उन्हीं की रचनाओं और विचारों के प्रति आकृष्ट होने के बावजूद भी उसके अन्तर्विरोधों के प्रति अपना असंतोष उन्होंने प्रकट किया। यह आकर्षण और विकर्षण दोनों अशोक वाजपेयी जैसे बहुमुखी

प्रतिभा के रूपायन के लिए कारण बन गया। उन्होंने स्वयं यह कहा भी है - अज्ञेय से कविता की गरिमा का पाठ सीखा तो मुक्तिबोध से उसकेलिए अनिवार्य आत्मसंघर्ष का। शमशेर बहादूर सिंह ने जटिलता से सीधा सामना करना सिखाया। रघुवीर सहाय से जीने के ऐन्द्रिक ब्योरे पकड़ पाने की हिकमत पाई तो श्रीकांत वर्मा से शब्द क्रीड़ा केलिए उत्साह मिला। उर्दु न जानने के बावजूद गलिब से गहरी पीड़ा में भी अपने पर, अपनी अकारथता पर हँसने की हिकमत पाई। वहाँ जो संबंध बने बिगडे, उनके विन्यास की जो विकलता जगी उसी ने कविता की ओर ठेला।[1] स्पष्ट है कि पृष्ठभूमि तैयार करने में इन सभियों का योगदान अकाट्य है। क्योंकि अशोक वाजपेयी के लिए कविता भाषा में अपने को टटोलने-नबेरने, अपने को बिखरने से बचाने और सहेजने का जतन ही है।

अपने काव्यजगत् को समृद्ध बनाने में अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादूर सिंह, श्रीकांतवर्मा का योगदान अशोक वाजपेयी ने स्वीकारा है। नयी कविता के नयी प्रवृत्ति को लेकर अपने समय को प्रभावित करने वाले अज्ञेय के व्यक्तित्व और रचनात्मक प्रतिभा का प्रभाव अशोक वाजपेयी पर स्पष्ट पडा है। सागर विश्वविद्यालय में पढाई के वक्त उन्हें कॉलेज बुलाने और बहस करने का प्रयास भी किया था। अज्ञेय से प्रभावित होकर लिखा गया लेख जो 'कवि कह गया

1. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी - पृ. 156, प्र.सं. 1997

है' ग्रन्थ में एकत्रित किया गया है। ये लेख असल में अज्ञेय जैसे महान कवि में विद्यमान कविता का समूचा आकलन है। 'अकेलेपन का वैभव' शीर्षक लेख अज्ञेय की कविता की अन्दरुनी तहों से गुज़रने का परिणाम है। यह यात्रा अज्ञेय जैसे शख्सियत से हमें परिचित कराती है। उसमें अशोक वाजपेयी ने लिखा है - 'जहाँ तक अज्ञेय की कविता का संबंध है, व्यक्तित्व की खोज की धारणा उसके बुनियादी सरोकार का सही नाम है। अज्ञेय की खोज व्यक्तित्व की खोज ही नहीं, आत्मसाक्षात्कार की भी कोशिश रही है। दूसरे अज्ञेय की कविता, अपनी श्रेष्ठ उपलब्धियों में व्यक्ति की उसके पूरे अकेलेपन में गहन खोज है।[1] अज्ञेय की काव्य संवेदना एवं सरोकार का महत्वपूर्ण अंकन इधर हुआ है। अपने प्रथम आलोचना ग्रन्थ 'फिलहाल' में 'बूढा गिद्ध क्यों पंख फैलाये' शीर्षक एक निबंध लिखकर 1965-1966 में अशोक वाजपेयी चर्चाओं के केन्द्र में आये थे। लेकिन यह उनका सकारात्मक एवं निजी मत है जिसे वांछनीय अर्थ में नहीं पढ़ा गया।

इलियट की एक काव्य पंक्ति को उद्धृत करने के पीछे के पीछे उनके मन में एकमात्र इच्छा यह थी कि बुजुर्ग होने से अज्ञेय अप्रासंगिक न हो जाय। अपने पुनःसंस्कार के लिए कवि की ओर से कोशिश की जाय। 1993 में लिखित एक अन्य लेख अज्ञेय की अनुपस्थिति में अशोक वाजपेयी की संवेदनात्मक परिस्थिति

1. कवि कह गया है - अशोक वाजपेयी, पृ. 18, प्र. सं. 2000

में अज्ञेय का स्थान स्पष्ट दृष्टिगत होता है। अज्ञेय की अनुपस्थिति में भी उनकी उपस्थिति का चित्र अशोक वाजपेयी हमारे सामने रखते हैं 'आज कई बेचैन और नाराज़ कवि अपने को अज्ञेय की तरह राहों के अन्वेषी कहना भले पसन्द न करें पर उससे यह बात मिट नहीं जाती कि वे अपने जीवनानुभव, समय और भाषा के साथ या उनमें जो रचनात्मक कर रहे है वह है अन्वेषण ही और आज भी, सौभाग्य से कविता में कोई एक राह नहीं राहें हैं।[1] ये वाक्य अवश्य अज्ञेय की संवेदनाओं से रचनात्मक सहमती का ही नतीजा है।

अपने प्रभाव के भूगोल तैयार करनेवाले एक अन्य कवि के रूप में अशोक वाजपेयी ने शमशेर बहादूर सिंह को स्वीकार किया है। हिन्दी कविता जगत् में अपनी विशेष एवं पृथक पहचान बनानेवाले शमशेर के सृजन संकल्प का संक्षिप्त आकलन अशोक वाजपेयी ने प्रस्तुत किया है। यह आकलन असल में कविता की सामाजिक उपयोगिता के नाम पर दी गयी सीमित एवं स्थूल परिभाषा के बरक्स शमशेर जी की सूक्ष्म किन्तु गंभीर परिभाषा से शुरू होता है। शमशेर के कथन के माध्यम से अशोक वाजपेयी अपनी काव्यदृष्टि एवं समाजिक दृष्टि को बना पा रहे है। तीसरे संसार की ज़रूरत ओर 'शब्दों के बीच की नीरवता का कवि' जैसे लेखों

---

1. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी - पृ. 93, प्र. सं. 1997

में अशोक वाजपेयी ने उन अन्तध्वनियों को जो बाद में उनकी कविता की अन्तर्ध्वनियों में रूपान्तरित हुई थी उसे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अशोक वाजपेयी ने मुक्तिबोध से कविता केलिए आवश्यक आत्मसंघर्ष सीखा था। भयानक खबर की कविता शीर्षक लेख में उन्होंने मुक्तिबोध की कविता के अन्तर्बाह्य को दिखाया है। उसमें अशोक वाजपेयी कहते हैं - उनकी कविता का सामाजिक दृश्य सिर्फ एक पीडा-भरा 'बाह्य' नहीं है, बल्कि वैसी ही पीड़ावाला एक अन्तस् भी है, और इसलिए अत्यंत सामाजिक होते हुए भी अत्यंत निजी है।[1] मुक्तिबोध से निकट आत्मीय संबंध बनाये रखनेवाले थे वे और यह लेख मुक्तिबोध की कविताई से अशोक वाजपेयी के आत्मीय संबन्ध का साक्ष्य है। ध्यान दने योग्य बात यह है कि अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, रघुवीर सहाय आदि कवियों से प्रभावित रहने पर भी अपनी अलग पहचान बनाने में अशोक वाजपेयी सफल हुए। काव्य संवेदना से लेकर उसकी शैली तक यह निजी पहचान वे कायम रखते हैं।

भारत में हिन्दी को छोड़कर अन्य प्रादेशिक भाषाओं में रचित साहित्यकारों से भी अशोक वाजपेयी प्रभावित हो गये। रवीन्द्रनाथ टागोर, जीवानन्द दास, मर्ढ़ेकर, फैज, बेद्रे जैसे अनेक कवि उनके विचारों में अथल-पुथल मचाने लगे।

---

1. कवि कह गया है - अशोक वाजपेयी, पृ. 55, प्र. सं. 1996

देवनागरी में मीर और गलिब का प्रभाव उल्लेखनीय है। इन कवियों और कविताओं की उपस्थिति ने अशोक वाजपेयी के सृजनात्मक जीवन को हमेशा प्रोत्साहित किया है। इसके साथ अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी में अनुवाद के माध्यम से अनेक यूरोपीय, आफ्रिकन कवियों से परिचय हुआ। इन सब ने अवश्य ही उनके भूगोल को विस्तृत किया। इसमें इलियट, यीट्स, डिलन टॉमस, विटमेन ऐमिली ड़िकिन्सन, आदि के अलावा, मायकोवस्की, नेरूदा, पास्तरनाक, रिलके, ब्रेख्त, बॉदलेयर, रिम्बो, अपोलोनेयर, पॉल वेलरी, नाज़िम हिकमत आदि को पढ़ना और जानना शुरू किया। इन रचनाकारों के अलावा 'न्यू डायरेक्शनस', 'एनकाऊन्टर', 'पार्टीज़न रिव्यू', 'सोवियत लिटरेचर', 'पोएट्री' सी पत्रिकाएं भी देखना शुरू किया था। इसके बारे में उनका कथन महत्वपूर्ण है - "एक तरह से अंग्रेज़ी ही हमें अंग्रेज़ी के वर्चस्व से मुक्त कर रही थी।"[1]

एक भारतीय कवि के रूप में अपनी पहचान बनाये रखनेवाले अशोक वाजपेयी के प्रभाव का भूगोल जितना भी विस्तृत क्यों न हो, फिर भी भारतीयता से, अपनी परंपरा से, अपने छोटे शहर सागर से, अपने घर से वे मुक्त नहीं हो पाये हैं। इन्हीं सब के साथ हमेशा संबंध जोड़ने में कवि सतर्क है। उनकी कविताओं से गुज़रते समय हमें इसका अहसास हो जाता है।

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 19, प्र. सं. 2001

## समकालीन कविता और अशोक वाजपेयी

समकालीन कविता में जीवन और यथार्थ पूरी तरह सन्निविष्ट हैं। लेकिन यह यथार्थ का सीधा प्रस्तुतीकरण नहीं है। उसमें यथार्थ के कई जटिलतर आयाम अपनी बारीकियों में संगुंफित है। अतः इतिहासबोध का एक समान्तर पक्ष भी उसमें प्राप्त है। इस कारण से समकालीन कविता अपने में एक बृहत्तर परिदृश्य सदैव अभिव्यंजित करने की अनियंत्रित इच्छा के साथ ही प्रकट होती है। सांस्कृतिक संकट के बहुरूपी चेहरे को उद्‌घाटित करने में समकालीन कविता कटिबद्ध है। समकालीन जीवन संदर्भ को लेकर समकालीन कवि का अपना विकल्प है।

अकविता जो समकालीन कविता के पहले हिन्दी कविता जगत् में चर्चा में आयी, कोई स्पष्ट स्वरूप प्रदान न कर सकी। फिर भी उसमें भी छटपटाहट की अभिव्यक्ति थी। ऐसे समय में घूमिल, राजकमल चौधरी जैसे कवियों का किंचित संबंध अकविता से होने के बावजूद उन्होंने कविता के अंतरंग को समय के सही परिदृश्य से जोड़ा। समय का परिदृश्य उतना स्पृहणीय नहीं था। इसलिए उनकी कविताओं में अस्पृहणीय यथार्थ के प्रति विद्रोह तथा अस्वतंत्र स्थितियों से प्रतिकृत होने की भावना तीव्र है। समकालीन कविता की शुरुआत इसी प्रतिरोधी स्वर के साथ समय की सही पहचान के साथ होती है।

अशोक वाजपेयी अपने प्रिय सागर शहर को छोड़कर 1960 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. करने के लिए दिल्ली चले गये। बचपन का वह प्रिय शहर छोडने के कारण जन्मे हुए अवसाद ने हमेशा उन्हें घेर लिया है, फिर भी दिल्ली गमन उनके बहुआयामी व्यक्तित्व के रूपायन का कारण बन गया। इधर आकर उनके प्रभाव का भूगोल एकदम व्यापक हो जाता है। यीट्स, इलियट जैसे कवियों की कविताएं पढ़ने से उनमें यह बात घर कर गयी थी कि "एक अध्यात्मशून्य, धर्मच्युत और राजनीति आक्रान्त समय में कविता की केन्द्रीय ज़िम्मेदारी आध्यात्मिक पुनर्वास है।"[1] इसके अलावा देवीशंकर अवस्थी, श्रीकांत वर्मा, निर्मला वर्मा आदि की प्रेरणा से आलोचना लिखने की प्रवृत्ति आरंभ की। दिल्ली के प्रबुद्ध लेखक समाज से भी घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया था। दिल्ली में रहते वक्त वहाँ आयोजित हरेक कला संबंधी कार्यक्रम के वे दर्शक हुए। इसप्रकार वे अपने समय को सृजनशील बनाने में सफल हुए।

## सांस्कृतिक समन्वयक की भूमिका

सेन्ट स्टीफेंन्स कॉलेज से अंग्रेज़ी में एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के बाद दो साल दयालसिंह कॉलेज में अध्यापक के रूप में सेवारत रहें। दिल्ली में गुज़रे ये दो वर्ष उनके सृजनात्मक जीवन के लिए प्रोत्साहवर्द्धक सिद्ध हुए। एक कुशल

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 24, प्र. सं. 2001

आलोचक के रूप में जिस अशोक को बाद में हम देखते हैं उसके लिए यह दिल्ली जीवन सहायक हुआ है। यह दौर कविता और आलोचना का सक्रिय दौर रहा है।

दिल्ली आकर उन्होंने बालचन्द राजन जैसे तेजस्वी आचार्य से यीट्स, इलियट, और ऑडेन जैसे कवि बकायदा पढे। इसके फलस्वरूप उनमें यह बात गहरे पैठ गयी कि एक अध्यात्मशून्य धर्मच्युत और राजनीति आक्रांत समय में कविता की केन्द्रीय ज़िम्मेदारी आध्यात्मिक पुनर्वास है और आदमी की तकलीफ को नज़रन्दाज़ या कमतर आँकने की कोशिश कविता को अपनी इस ज़िम्मेदारी से विरत करती है।[1] दिल्ली में रहते आलोचना लिखने की प्रवृत्ति के पीछे देवीशंकर अवस्थी, श्रीकांत वर्मा, निर्मल वर्मा आदि की प्रेरणा मिली थी। प्रथम आलोचना ग्रन्थ 'फिल्हाल' में संकलित कुछ लेख इस अवधि में लिखा था। इसके साथ अन्य प्रबुद्ध लेखक समाज से जैसे - अज्ञेय, नरेश मेहता, निर्मलवर्मा, कृष्णबलदेव वैद, नेमीचन्द्र जैन, प्रयाग शुक्ल, नामवरसिंह आदि से संबंध कुछ घनिष्ट हुआ। परिणाम यह निकला कि कुछ कविताएं भी इस समय, उन्होंने लिखी। प्रथम संग्रह में समाहित 'कविताक्रम' इस दौर में रचित एक उल्लेखनीय कविता है। 'ईश्वर' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ है -

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी - पृ. 24, प्र. सं. 2001

मैने देखा - मैं ने देखा पहली बार उसे देखा :
उसका काला दुबला सा शरीर हाँफ रहा था
एक पिचके चेहरे में आँखें नीचे झुकी थी
उसके हाथ में शायद करताल थी
डण्डे, गँडासे ओर झण्डे लिए खडी एक भीड के पीछे
खडा था वह / उसे उसके पीछे
दूर कहीं / भोर का संकीर्तन था।[1]

कवि अशोक वाजपेयी की बुनियादी सरोकारों का एक मिश्रित संस्कार इस कविता में पाया जाता है। ईश्वर की उपस्थिति - अनुपस्थिति का द्वन्द्व, बूढे में ईश्वरीयता का एहसास, समाज की दुर्बलता, और भोर का संकीर्तन ये सब अशोक वाजपेयी की मूल संवेदनाएँ बनकर तबसे आकार ले रहे थें। साथ ही साथ एक समन्वयक के रूप में वे विकसित हो रहे थे। उनके विचार क्षेत्र में काफी फैलाव आ गया। दिल्ली में उस समय कोई भी आयोजन ऐसा नहीं था जिसमें अशोकजी न गया हो। इस अवधि में साहित्यिक आयोजनों के अलावा वे शास्त्रीय संगीत सभाओं, नृत्य और नाट्य प्रदर्शिनियों, ओर कला प्रदार्शिनियों के सजग दृष्टा रहे। इन कार्यकलापों ने उनकी कविता को ही नहीं समृद्ध किया बल्कि बाद के सार्वजनिक जीवन में सक्रिय संस्कृति कर्मी होने के लिए आधारभूमि भी तैयार की।

---

1. शहर अब भी संभावना है - तिनका तिनका भाग-1 - अशोक वाजपेयी - पृ. 105, प्र.सं. 1966

सन् 1965 में दयालसिंह कालेज के अंग्रेज़ी विभाग से अध्यापन छोड़कर वे भारतीय प्रशासन सेवा में आ गये। अगले सत्ताइस वर्ष वे दिल्ली से अलग रहे। मसूरी में साल भर प्रशिक्षण के बाद वे मध्यप्रदेश लौट आये। वहाँ अलग अलग स्थानों में सेवारत रहे। प्रशासकीय सेवा में कार्यरत इन दिनों में अशोक वाजपेयी एक कवि के साथ साथ आलोचक, संपादक, संस्कृतिकर्मी एवं समन्वयक की भूमिका निभाते रहे। सारी व्यस्तताओं के बीच भी अपनी रचनात्मक क्षमता को आगे बढ़ाने में वे क्रियाशील थे। उनकी रुचि एवं क्षमता से परिचित मध्यप्रदेश सरकार अगले लगभग पन्द्रह बरसों तक सांस्कृतिक विकास का एक नया मॉडल तैयार करने का कार्य उन्हें सौंप दिया जिसे उन्होंने भली भाँति निर्वाह लिया। मध्यप्रदेश कला परिषद के पुनराविष्कार से शुरू कर कालिदास अकादमी, ध्रुपद केन्द्र, चक्रधर नृत्य केन्द्र, मध्यप्रदेश सरकार के संस्कृति विभाग और भारत भवन बहुकला केन्द्र की स्थापना और इन में से अधिकांश का संचालन करने की जिम्मेदारी अशोक वाजपेयी के कंधे पर थी। उन्होंने लगभग एक हज़ार से अधिक आयोजन किए हैं जो उनके कला के प्रति निष्ठा और सांस्कृतिक विरासत के प्रति प्रतिबद्ध होने के परिचायक है। इनमें से खजुराहो नृत्य समारोह, ध्रुपद समारोह, सारंगी मेला, भारतीय कविता समारोह, ऐशियाई कविता समारोह आदि बहुत चर्चित हैं।

अशोक वाजपेयी अपनी कविता में आज तक कलाओं से अन्तः संबध रखते आए। उनके अनुसार कलाओं को सचाई का हिस्सा मानने का पूर्वग्रह हमेशा

हो जीवनदायी और सृजनक्षम रहा है। वे हमारी जिजीविषा का स्थायी स्थापत्य रही है। कई बार मानव होने का अहसास विराट विपुल निरन्तरता में अवस्थित होता उन्हीं के माध्यम से याद आता है।"[1] कलाओं की उत्कृष्टता का आग्रहपूर्ण सम्मान करने के लिए भोपाल में स्थापित भारत भवन राष्ट्रीय बहुकला केन्द्र के वे संस्थापक एवं आयोजनों के वर्षों तक सक्रिय संयोजक रहे। भारत भवन बहुकला केन्द्र की कार्यप्रणालियाँ और वहाँ आयोजित प्रत्येक कार्यक्रम अशोक वाजपेयी के कृति व्यक्तित्व को तराशने में सहायक है। भारत भवन न्यास अधिनियम के अनुसार उसका प्रधान उद्देश्य है - कलाओं का परिरक्षण अन्वेषण, नवप्रवर्तन, उन्नयन और प्रसार। वहाँ भारतीय कलाओं को विशेषकर आदिवासी लोककला को विशेष प्रतिष्ठा मिली। साथ ही संगीत और कविता की पहली त्रैवार्षिकी, ऐशियाई कविता समारोह विश्व कविता समारोह 37 पूर्ण नाटकों के 750 से अधिक प्रदर्शन, पहला राष्ट्रीयनुक्कड़ नाट्यमेला, पहला समकालीन रंग संगीत समारोह आदि अनेक कार्यक्रम आयोजित किये गये। इसके अलावा जैनेन्द्र कुमार, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, रामशेर बहादूर सिंह, श्रीकांतवर्मा, अज्ञेय आदि पर भी बहुत से आयोजन हुए है। कला और साहित्य के महत्व को आत्मसात् करते हुए उसकी प्रतिष्ठा केलिए तपस्या करनेवाले एक साधक के रूप में अशोक वाजपेयी की महती भूमिका है।

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 17, प्र. सं. 2001

## संपादन का सौन्दर्यशास्त्र

बचपन में साहित्य के प्रति रुचि के कारण बाल पत्र-पत्रिकाओं से उनका संबंध शुरु होता है। उन पत्रिकाओं को चाव से पढ़ना और उनमें छपनेवाली रचनाओं से प्रेरित होकर कुछ लिखना धीरे-धीरे आदत सी हो गयी। साहित्य, कला और सांस्कृति के व्यापक प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका पर उनकी आस्था थी। स्कूली शिक्षा के दौरान अशोक और कुछ मित्रों ने मिलकर एक अनियतकालीन पत्रिका की हस्तालिखित प्रति निकाली थी। अशोक उसके संपादक थे। उसमें उनकी और मित्रों की कविताएँ, नाटक, और लेख छापते थे। साहित्यिक एवं कला के संपादन की कला को जितना अशोक वाजपेयी ने परिमार्जित किया है उतना किसी ने नहीं किया है।

अशोक वाजपेयी के अपने रचना कर्म में सक्रिय हिन्दी में प्रकाशित, 'कृति', 'ज्ञानोदय', 'कल्पना', 'युगचेतना' जैसी पत्रिकाओं से संबंध बनाने का अवसर उन्हें प्राप्त हुआ। सन 1957-58 में अशोक वाजपेयी और कुछ मित्रों ने मिलकर 'समवेत' पत्रिका निकाली जिसमें उस समय के सभी मुख्य लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं। उस समय नये साहित्यिक मूल्य और नयी चेतना का आभास पूरे हिन्दी प्रदेश में व्याप्त था। इसी सन्दर्भ में साहित्यिक पत्रिकाओं की निर्णायक भूमिका थी।

उन्होंने 1970 से 1974 तक पाठक और समाज में कवि और कविता की गरिमा बढ़ाने के लिए 'पहचान' (अनियतकालीन) का संपादन उन्होंने किया। उसके बाद मध्यप्रदेश कला परिषद्, और बाद में भारत भवन से निकली पत्रिका 'पूर्वग्रह' के सन 1974 से 1990 तक वे संपादक रहे। पूर्वग्रह शब्द उन्हें सबसे प्रिय है जिसके मूल में साहित्य संबंधी उनका पूर्वग्रह स्पष्ट है। उनकी राय में आज उत्तरदायी मानसिकता, प्रबुद्धता या गहरी समझ बनाने फैलाने में बड़ी-बड़ी पत्रिकाओं की भूमिका अत्यंत अनमनी लगभग संदिग्ध रही है।"[1] पूर्वग्रह मण्डली के नाम पर हिन्दी साहित्य जगत् में बहुत हल्ला मच गया है जिसका साफ-साफ खण्डन करते हुए अशोक वाजपेयी कहते हैं कि 'पूर्वगृह' न तो किसी रूपवाद का समर्थक है न ही प्रगतिशील और जनवादी विचारधारा का विरोधी। उसके लेखकों की संख्या दो सौ से अधिक है और उसमें अनेक प्रगतिशील भी शामिल है। रूप या शिल्प पर कोई अतिरिक्त आग्रह भी पूर्वग्रह ने नहीं किया है।[2] 'पूर्वग्रह' तो साहित्य कला और संस्कृति पर गहरी आस्था एवं खुली दृष्टि का प्रमाण है।

'पूर्वगृह' के बाद 1992 से लेकर 'समास' पत्रिका का संपादन उन्होंने किया। पत्रिका के बारे में उनका कथन महत्वपूर्ण है। "समास' यह कोशिश करना

---

1. मेरे साक्षात्कार - अशोक वाजपेयी - पृ. 10, प्र. सं. 1998
2. वहीं

चाहता है कि हम अपने किये धरे की वैचारिक प्रतिपत्तियों को ध्यान पूर्वक देख समझ सकें जो वैचारिक मतभेद के बावजूद कई रंगतों के सृजन को आदर देने और गंभीरता से लेने की हो सकती है। ऐसी जगह भले बहुत कम पर बची ज़रूर है और बढायी जा सकती है।"[1] एक साहित्यिक पत्रिका के द्वारा उनका कम मकसद यहाँ स्पष्ट है। इसके साथ यह भी ध्यातव्य है कि 'समास' केवल साहित्य तक ही सीमित नहीं बल्कि मानवीय संस्कृति के रूपायन में संलग्न अन्य पहलुओं जैसे नृत्य, संगीत, चित्रकला के गंभीर वर्तमान को भी सामान्य जनता के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास है। इसके अलावा वे बहुवचन (1989 से हिन्दी और अंग्रेज़ी में) कविता एशिया (1990) 'हिन्दी', जैसी पत्रिकाओं का संपादन भी कर रहे हैं।

## साहित्य की सौन्दर्यात्मक धारणाओं का विकास

एक आलोचक के रूप में अशोक वाजपेयी ज्यादा सक्रिय रहे हैं। इतने वर्षों में फैला उनका आलोनात्मक लेखन उनके वैचारिक आग्रहों का ही दस्तावेज़ है। मुख्य रूप से एक कवि आलोचक के रूप में अशोक वाजपेयी जाने जाते हैं। साहित्य, कला और कविता पर उनकी टिप्पणियाँ स्थायी विचारों पर आधारित हैं। विचारधारा पर नहीं। आलोचना को एक सृजनात्मक विधा मानने का पूर्वग्रह उनकी रचनाओं में उपलब्ध है। 'फिलहाल' (1970), 'तीसरा साक्ष्य' (1979), 'कुछ

---

1. 'समास' सम्पादकीय - पृ. 1 - सितंबर 1992

पूर्वग्रह' (1984), 'कविता का जनपद' (1992), 'समय से बाहर' (1995), 'कविता का गल्प' (1996) 'सीढ़ियाँ शुरु हो गयी हैं' (1996), 'कला विनोद' (1982), 'कवि कह गया है' (1998), 'कभी कभार' (2000) 'पाव भर जीरे में ब्रह्म भोज' (2003), 'आत्मा का ताप' (2004) आदि उनकी प्रमुख आलोचना पुस्तकें हैं। मूलतः कविता की ज़रूरत, काव्य मूल्यों की परख, अभिव्यक्ति के संकट, साहित्य की स्थिति, कला संस्कृति का परिवेश, मनुष्य की हालत आदि उनकी आलोचना का प्रमुख विषय है। इन टिप्पणियों, वक्तव्यों, आलेखों में उल्लिखित सामग्री से कविता समाज संस्कृति के संवर्द्धन के लिए पुख्ता घोषणा पत्र तैयार किया जा सकता है।[1] उनके सर्वग्राही नारे हैं 'कविता की वापसी', 'विचारों से विदाई', 'आलोचना का जनतंत्र', 'समय से बाहर' आदि।

उनका प्रथम आलोचना ग्रन्थ 'फिलहाल' है जिसे आज की कविता का लेखा जोखा माना जा सकता है। साथ ही आलोचना कर्म को उसकी पूरी गंभीरता के साथ अपने कच्चे-पक्के इरादों से रूपायित करने की कोशिश भी है। फिलहाल के 'दृश्या लेख' में वे कहते हैं मैं ने समकालीन कविता को समझने बूझने और इस समझ से हमारे समय के मनुष्य की हालत के बारे में अपने अहसास को प्रासंगिक और गहरा करने की कोशिश की है। इस कोशिश के पीछे यह सुख भी है कि कविता, भाषा, रचनात्मक संवेदना की हालत की पड़ताल मनुष्य की हालत की

---

1. अशोक वाजपेयी - पाठ कुपाठ सं. सुधीरा पचौरी - पृ. 145, प्र. सं. 1999

समझ और पहचान की ओर ले जाती है।[1] 'फिलहाल' में युवा कविता की दिशा और दृष्टि का सवाल अशोक वाजपेयी उठा रहे थे जो अकवितावादी काव्यान्दोलन के गिरफ्त में फँसा हुआ था। 'फिलहाल' के अधिकांश लेख युवा कविता पर केन्द्रित है। समकालीन कविता को समझने का एक साहसिक, उत्तेजक और प्रामाणिक उपक्रम भी है। लेकिन फिलहाल न केवल युवा कविता आन्दोलन की संभावनाओं का पता लगाने और उन्हें प्रतिष्ठित करने का साहसिक उपक्रम है, बल्कि अपने समय के महत्वपूर्ण कवियों के काव्य संसार पर निर्मम, निर्णायक, और सटीक आलोचना भी है, जो उनकी व्यावहारिक और सैद्धांतिक आलोचना का श्रेष्ठ उदाहरण है।[2] अरविन्द त्रिपाठी अशोक वाजपेयी को एक व्यावहारिक आलोचक मानना बेहतर समझते हैं क्योंकि वे अपनी आलोचना में ज़्यादा स्पष्ट, चौकन्ने और कविता की अन्दरूनी तहों में घुसकर कविता के सत्य को भेदनेवाले है।[3]

उनके लिए आलोचना एक एकाग्र साहित्यिक कर्म है। साथ ही समकालीन परिदृश्य से हस्तक्षेप करना भी उनका उद्देश्य रहा है। अपने आलोचना कर्म की गंभीरता को लक्ष्य करके वे 'कुछ पूर्वग्रह' में कहते हैं - हम ने भाषा का अवमूल्यन, अकविता की रुमानियत कविता ओर राजनीति सरलीकरण का विरोध, जातीय

---

1. फिलहाल - अशोक वाजपेयी - पृ. 9, प्र. सं. 1970
2. वहीं
3. साक्षात्कार - अरविन्द त्रिपाठी - पृ. 154, जनवरी-मार्च 1995

स्मृति, विचारों से विदाई, आदि कुछ मुद्दे उठाने की कोशिश की।"[1] 'कुछ पूर्वग्रह' शीर्षक ग्रंथ उनकी आलोचना दृष्टि और उनके आलोचनात्मक विवेक को समझने में सहायक है। रचनाकार हमेशा पूर्वग्रह के साथ रचना करते हैं उसीप्रकार आलोचक भी अपनी आलोचना में, कविता, साहित्य, जीवन और आलोचना संबंधी अपना पूर्वग्रह प्रकट कर रहे हैं।

अशोक वाजपेयी आमतौर पर आलोचना जगत में रूपवादी और कलावादी आलोचक के रूप में विख्यात हैं। उनकी सृजनात्मक आलोचना इसकी गवाही देती है कि वे अन्य आलोचकों से ज़्यादा साफ, बेलाग, और कवि कर्म के मर्म को समझनेवाले दुर्लभ आलोचक हैं। उनकी व्यावहारिक समीक्षा बुनियादी रूप से सृजनात्मक इसलिए है कि वे कविता की मूलभूत बनावट में बहुत चौकन्नेप्पन के साथ प्रवेश करते हैं।

'फिलहाल' से 'कुछ पूर्वग्रह' तक तथा उसके आगे भी अपने लेखन कार्य में वे एक ऐसे उग्र विवेक के कायल नज़र आते हैं जो अपने समय की अपढ़ता संस्कृति कर्म के प्रति व्यापक सामाजिक उदासीनता, संवादहीनता, को तोड़कर एक नया संवाद पैदा करें।[2] अर्थात् इतने सालों में फैले उनका आलोचक व्यक्तित्वों उनके

---

1. कुछ पूर्वग्रह - अशोक वाजपेयी - पृ. 175, प्र. सं. 1984
2. साक्षात्कार - पृ. 143, जनवरी-मार्च 95

सरोकार स्थिर रहे हैं। 1997 में प्रकाशित 'कविता का गल्प' भी कविता और कवियों पर लिखा निबंध संग्रह है जिसमें ताज़गी और उत्साह भरा दस्तावेज़ है और कविता के इर्द-गिर्द लालित्य चिन्तन भी है। "कविता अवश्य दौडती है, पर जीवन और मनुष्य के लिए, भाषा केलिए, किसी ओर के लिए नहीं।"[1] यही विचार अन्य ग्रन्थ 'कवि कह गया है' (1998) में भी स्पष्ट है - बिना जीवन के कविता संभव नहीं पर कविता का अपना भी जीवन है, वह अनुकरण नहीं, भाषा का स्वाधीन कर्म है। वह प्रथमतः और अन्ततः भाषा में जीना है, वह जीवन का नहीं जीने का रूपक है।[2]

अशोक वाजपेयी घोषित तौर पर कलाओं की स्वायत्तता के हिमायती हैं। साहित्य को किसी विचार धारा के खूँटे में बाँधकर देखना उन्हें रास नहीं आता। 'सीढ़ियाँ शुरू हो गयी' है ग्रन्थ में उन्होंने कहा है। "हमारी शताब्दी की सारी विसंगतियों के बाद अब यह मुकाम आ गया लगता है कि हम साहित्य की अपनी वैचारिक स्वायत्तता, उसके वैचारिक स्वराज पर ध्यान दे।"[3] साहित्य की इस स्वतंत्र विचार की तानाशाही अशोक वाजपेयी का एक और पूर्वग्रह है।

तकनीकी क्रांति के चरम समय में आकर अखबार जैसे माध्यमों में साहित्य कला का स्थान निरन्तर कम होता जा रहा है। लेकिन पिछले तीन वर्षों से 'जनसत्ता'

---

1. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी - पृ. 32, प्र. सं. 1997
2. कवि कह गया है - अशोक वाजपेयी - पृ. 6, प्र. सं. 2000
3. सीढ़ियाँ शुरू हो गयी है - अशोक वाजपेयी - पृ. 6, प्र. सं. 2000

में 'कभी कभार' नाम से अशोक वाजपेयी लिखते रहे हैं। साहित्य जगत् में अनौपचारिक उपस्थिति दर्ज करनेवाली यह पुस्तक कवि के अपने समय और समाज व्याप्ति का दस्तावेज़ है। यह उद्यम जो सारी आवाजाही और शोरगुल के बीच साहित्य कला की जगह सुरक्षित रखने की इच्छा से तैयार किया गया है। भूमिका में उनका कथन उल्लेखनीय है - "उनमें वैचारिक ऊहापोह, चिन्ता और उत्सुकता, जानकारी और सूचना, घटनाएँ और उक्तियाँ, विश्लेषण और विचार, भावोछ्वास ओर स्मृतियाँ आदि सभी गूँथे हुए हैं।[1] इस प्रकार कवि आलोचक अशोक वाजपेयी का साहित्य साधक की निरंतर साधना का द्योतक है।

अशोक वाजपेयी मुख्यतः कवि हैं, तत्पश्चात कविता के आलोचक हैं। इस कवि आलोचक का आत्मवृत्तांत है 'पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज' (2003)। शीर्षक का अशोक वाजपेयी के जीवन के साथ गहरा ताल्लुक है। क्योंकि जीवन की क्षणिकता एवं असहायता के बीच में भी कविता में जीवन को, घर को, प्रकृति को भरने की, संपूर्ण ब्रह्माण्ड को उपस्थित करने की अदम्य जिज्ञासा उनकी समूची रचनाओं में विद्यमान है। कलाकारों से निकट संबंध रखनेवाले अशोक वाजपेयी का नवीनतम ग्रन्थ सेयद हैदर रज़ा पर केन्द्रित है। एक चित्रकार की ज़िन्दगी एवं उनकी

1. कभी कभार - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. सं. 2000

कला को लेकर यह पुस्तक अपने आप में एक कविता है। कवि आलोचक नाम उनकेलिए सहज प्रतीत होता है।

## कवि भूमिका

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है कि जिसे अपने जीविनकाल में विश्वास करने केलिए किसी व्यक्ति या वस्तु का होना आवश्यक हो जाता है। उसी विश्वास के बल पर वह जीवन बिताता है। विश्व साहित्य में कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जो साहित्य में विश्वास रखते हैं, रचना पर विश्वास करते हैं और वे उसी कला में एक घर बसाना चाहते हैं क्योंकि घर मनुष्य के लिए सबसे विश्वसनीय एवं सुरक्षित आश्रयस्थान है। जहाँ वे बिना भय से प्रवेश कर पाते हैं। घर में उन्हें अपने इच्छानुसार जीने का सोचने का, कुछ करने का अधिकार प्राप्त है। कुछ साहित्यकार ऐसे हैं जो शब्दों में, कविता में, सृजन प्रक्रिया में एक घर बसा रहे हैं। घर की जैसी आत्मीयता का अनुभव करते हैं। अशोक वाजपेयी ऐसा एक कवि है जो अपनी कविता में एक भरा पूरा घर बसाने की इच्छा के साथ कविता जगत् में सतत् यात्रारत हैं। इसी अन्तहीन यात्रा में अशोक वाजपेयी अन्य साहित्यकारों की रचनाओं का वाचन एवं मनन चिंतन करते रहते हैं।

अशोक वाजपेयी का जन्म सन् 1941 में हुआ था। कम उम्र में कविता के प्रति वे आकर्षित हो गये।कवि के रूप में अहमियत पाने तक उनके साहित्यक

जीवन केलिए हिन्दी प्रदेश प्रभावदायक रहे। प्रारंभिक कविताएँ 'भारती', 'धर्मयुग' 'कल्पना' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं। दिसम्बर 1958 में इलाहाबाद में आयोजित प्रख्यात साहित्यकार सम्मेलन में उन्होंने भाग लिया। यह कविता लिखने में भरोसा बढ़ने केलिए सहायक हुआ। इस दौरान उनमें यह अहसास बहुत गहरा हो गया कि संसार में कविता बहुत सारी आवाज़ों में छन्द और शैलियों में जगहों और मुकामों से बुनियादी तौर पर आदमी होने और बने रहने के सुख दुःख तकलीफ और संघर्ष को विन्यस्त करती है।"[1] अशोक वाजपेयी के अबतक ग्यारह काव्य संकलन प्रकाशित है। सर्जना के क्षेत्र में निरन्तर सक्रिय रहनेवाले अशोक वाजपेयी की कविताएँ सारे के सारे तुमुल कोलाहल के बीच भी अपना स्वर अलग दर्ज करती हैं।

अशोक वाजपेयी का पहला काव्यसंग्रह 'शहर अब भी संभावना है' सन् 1966 में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुआ। साठ के बाद उभरती युवा पीढी के अशोक वाजपेयी के प्रस्तुत संग्रह की भाषा का ताज़ा और उत्तेजक उपयोग और उसके माध्यम से एक ऐसा संसार जिसने चीज़ों के संबंध में कुछ बदलते हुए और कुछ अप्रत्याशित वर्णन और विवरण देने में सफल रहा है। इसमें विद्रोह या संघर्ष का अक्रामक स्वर नहीं। मातृकरुणा, प्रेम, भाषा, आदि कुछ बुनियादी लगावों का विकल विन्यास है। ये कविताएँ दुनिया के सारे विनाश के विरुद्ध कुछ गहरे मानव

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 29 प्र. सं. 2001

संबंधों में अर्थ और स्थापना की लगातार खोज भी करती है। दुनिया की बढ़ती हुई असंगति और सहनीयता के पूरे अहसास के साथ ये कविताएँ मानवीय होने के अनुभव और तनावों को आत्मीय स्तर पर परिभाषित करती है। "ठण्ड की इक शाम एक पागल औरत" शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं -

आसमान के पास दिल नहीं है
पेडों के पास बाँहें नहीं है
और बन्दियों के पास भाषा नहीं है
जिससे बात कर सकूँ...
मेरे पास एक दिल है[1]

जो किसी बच्ची के साथ रहना चाहता है। मानव जीवन के तनाव को आत्मसात करनेवाले कवि इधर प्रकट होते हैं। प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ सागर के जीवन से अभिमंडित है। यह पडोस का प्रभाव उनकी कविता में उत्तरोत्तर विकसित होता आया।

प्रस्तुत संग्रह में अली अखबर खाँ के सरोद-वादन पर कविता है। मकबूल फिदा हुसैन के चित्र देखकर लिखी कविता है। खजुराहो पर कविता है। अशोक वाजपेयी बराबर यह मानते रहे है कि कविता की संगीत, नृत्य, चित्र, आदि से एक

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 72, प्र. सं. 1966

अटूट बिरादरी है। छोटे शहर के इस तरुण कवि के लिए ये सभी कलाकृतियां उसके प्रेम या जीवन की तरह ठोस सच्चाई थी। उसकी कविता तब से आज तक उस सच्चाई को आत्मसात् करती हुई आगे बढ़ रही है। कवि के अनुसार यह हमारी जिजीविषा का स्थायी स्थापत्य है। कला के प्रति यह कोमल आस्था उनके संपूर्ण जीवन में प्रतिबिंबित नज़र आती है।

लगभग अठारह वर्ष बाद उनका दूसरा संग्रह 'एक पतंग अनंत में' (1984) प्रकाशित हुआ। अशोक की माँ पहले संग्रह में आसन्न प्रसवा और ऋतुओं की तरह युवा थी, दूसरे संग्रह में दिवंगता है। इसमें चौव्वन कविताएँ शामिल हैं। इस लंबे अंतराल में कविता के समय में रहने और उसके पार जा सकने की युक्तियों पर पकड कुछ पक्की हुई और समय और अनन्त के युग्म ने भी एक बुनियादी काव्याभिप्राय का रूप लेना शुरू किया।[1] इस संग्रह की कविताओं को लेकर उनका कथन है कि "मृत्यु और ईश्वर की अनुपस्थिति को जो हल्का सा आभास पहले था वह और अधिक गहरी छाया की तरह कविता को ढ़कने लगा था, पर यह बोध जिजीविषा की छाया को बाधित या धूमिल नहीं करती।[1] इस संग्रह की प्रेम कविताओं में ऐन्द्रिकता का रंग कुछ और गहरा हो उठा है। अवसाद, प्रेम,

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका, पृ. 28, प्र. सं. 2001
2. वहीं

ऐन्द्रियता, मृत्यु, अनुपस्थिति, और जिजीविषा के चित्रण के साथ कवि ने अफसरी जीवन के अनुभव ओर छवियों को कविता में लाने की भरसक कोशिश की।[1] एक ओर विशेषता यह है कि उनकी कविता में उनका परिवार मुखर है। पारिवारिक वातावरण और संबंधों की तलाश उन्हें 'परिवार और पडोस का कवि' कहने योग्य बनाता है।

अशोक वाजपेयी की कविता के बारे में कहा जाता है कि उनमें सामाजिक सरोकार या पीड़ितों की पक्षधरता का अभाव है, किन्तु यह ठीक नहीं है। आपाधापी और चिंताग्रस्त, तनावयुक्त जिन्दगी में निरन्तर मरती संवेदनाओं को कवि ने महसूस किया है। उनकी रचनाओं में चख-चख करती औरतें, अस्पताल के बीमार चेहरे, बेतहाशा भीड, गुर्राहट, नौकरशाही और पृथ्वी के प्रति कवि की चिन्ता हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।[2] 'प्रार्थना' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है :-

रक्त के ऐश्वर्य में
एक दीपशिखा जलती है
भारी शोरगुल और चीज़ों के बेगानेपन के बावजूद
तुम जानते हो कि वह कामना है
प्रार्थना का वह एक मात्र रूप
जो हृदय को सहारा देता है।[3]

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका, पृ. 28, प्र. सं. 2001
2. संवादों के सिलसिले - डॉ. संतोष कुमार तिवारी - पृ. 45, प्र. सं. 2000
3. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका भाग 1) अशोक वाजपेयी - पृ. 156 प्र. सं. 1984

कवि के लिए यह प्रार्थना भी एक उम्मीद है। तत्कालीन विडंबनाओं के गिरफ्त से मुक्ति पाना नामुमकिन है। लेकिन कवि उम्मीद छोड़ने के लिए तैयार नहीं। हम यह स्वीकारते हैं कि उनमें समकालीन आदमी की यातना ग्रस्त ज़िन्दगी का इज़हार करनेवाली रचनाएं अल्प है, और यह कि उनमें चुनौती, विरोध में तनी हुई मुट्ठियाँ एवं क्रांतिचेतना का अभाव है। फिर भी 'जबरजोत', 'साक्षात्कार' जैसी कवितायें नये साहस का सरल गणित सिखाती है। 'जबरजोत' में भभकता हुआ विरोध नहीं विरोध के प्रतिफलन का चित्रण है। यहाँ विरोध और विद्रोह कर्मरूप में परिणत होता है। क्रोध कविता के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में कर्मकविता का समय आता है, जो अशोकजी द्वारा लाये गये थे। जबरजोत में किसान न गुस्से में फनफनाता है, न नारे लगाता है और विषमता के रक्षकों के कानूनों को तोड़ता है। यह कविता गंभीर विषय वस्तु को सादे लिबास में कहने की उनकी क्षमता को पक्का करती है।

सन् 1986 में उनका तीसरा संग्रह 'अगर इतने से' प्रकाशित हुआ। दूसरे संग्रह के दो वर्ष बाद आए इस संग्रह में उनकी शब्द के प्रति आस्था और अनंत के लिए उनका आग्रह दोनों स्पष्ट है। इसमें आकर उन्होंने गद्यकविता लिखना शुरू किया था। 'विकल्प' शीर्षक कविता न सिर्फ विकल्प के बारे में लिखी कविता है बल्कि कविता के विकल्प में लिखी गद्यकविता है।

इसके बावजूद कौन जानता है कि उसकी
अकिल में सचमुच

पत्थर पड़ गया हो और पत्थर कुछ और होना चाहे
पत्थर के सामने अनेक विकल्प है।[1]

इस कविता में बतकही का जो लहजा लिया गया है वह आगे अशोकजी की कविता में काफी जगह पाता गया। अरुण कमल का यह कथन उल्लेखनीय है कि "अशोक वाजपेयी की कविताओं की मूलभूमि है ठेठ निम्न मध्यवर्गीय कस्बाई जीवन, जिसके प्रति एक अविच्छिन्न अनुराग इन कविताओं में मिलता है। दैनंदिन के मानव संबंध माता-पिता, पशु-पक्षी वह जीवन है जो शुरू से अंत तक उनकी कविताओं का आश्रय है।"[2] इस संग्रह में भी जीवनासक्ति, प्रेम, ऐन्द्रियता पहले की ही तरह सरोकार बने रहे। मृत्यु और नश्वरता भी साथ निभाया। भाषा और शब्द के प्रति उनका झुकाव यहाँ भी अधिक स्पष्ट है। दस्तावेज़ में श्री ओमनिश्चल से हुई बातचीत में उन्होंने बताया था कि "भाषा ही मेरा अध्यात्म है।"[3]

न बच्चा रहेगा न बूढ़ा
न गेंद, न फूल, न दालान
रहेंगे फिर भी शब्द
भाषा एकमात्र अनन्त है।[4]

---

1. अगर इतने से (तिनका-तिनका भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 225, प्र. सं. 1986
2. कविता और समय - अरुण कमल - पृ. 141, प्र. सं. 1999
3. दस्तावेज 86 जनवरी-मार्च - पृ. 17, प्र. सं. 2000
4. अगर इतने से (तिनका तिनका भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 235 प्र. सं 1986

यह कविता भाषा के प्रति उनकी आस्था प्रकट करती है। कविता ऐसी एक स्थायी सर्जना है, जिसके शब्दों में जीवन हैं जो कवि के मर जाने के बाद भी जीवित रहेगा। भाषा की यह अनन्त शक्ति कवि को अपनी कविता के माध्यम से अमर बनाती है।

सन् 1989 में उनका चौथा संग्रह 'तत्पुरुष' प्रकाश में आया। इसमें भी शब्द की महत्ता और अधिक स्पष्ट है। "कविता के अपने परिसर में शब्द सिर्फ रचते-बसते भर नहीं हैं। वे अक्सर दूसरे शब्दों को पुकारते है। वे अपने पूर्वज शब्द को लंबी नींद से जगाते हैं किसी नये शब्द उल्लसित होकर निहारते हैं।[1] 'जगह' शीर्षक कविता में -

"कहाँ है शब्दों की जगह?
शब्द किसी की जगह नहीं लेते।
हमारे तुम्हारे लिए
जगह खोजते बनाते हैं।
सारी थकपेल के बावजूद
जगह बचा रखते हैं।[2]

शब्दों के द्वारा उसमें एक घर बसाने की अनियंत्रित इच्छा ऐसी कविताओं में संकेतित है।

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी - भूमिका : पृ. 33, प्र. सं. 2001
2. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 52, प्र. सं. 1989

अशोक वाजपेयी की कविता का भावसंसार बहुत व्यापक है उतना ही जितना कि उनकी शब्द संपदा अनंत है। शुरू से ही प्रेम, ऐन्द्रियता अवसाद, घर-पडोस और जीवन में ईश्वर की उपस्थिति, मृत्यु आदि पर लगातार वे लिखते रहे हैं। उसीके साथ उनकी कविताएँ मानवीय संबंधों को तलाशती हैं। माता-पिता, बालसखा, बेटा-बेटी, बहू, नर्तकी, पत्नी, अन्य साहित्यकार, चित्रकार, संगीतकार आदि केलिए लिखी गयी उनकी कविताओं में संबंधों के ऐसे अनेक स्तर स्पष्ट हुए है जो कि हिन्दी कविता में पहले कभी छुए ही नहीं गये थे।" 'तत्पुरुष' संकलन के बारे में उनका कथन है - सारे समकालीन विपर्यास, विध्वंस और संकोच के बरक्स ये कविताएँ, जगह, आदमी और शब्द की उत्तरजीविता का शान्त और विनम्र विन्यास है।"[1] यह उनकी कविताओं का लक्ष्य स्पष्ट करता है।

सन् 1991 में प्रकाशित उनके पाँचवाँ संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' के केन्द्र में जिजीविषा की छाया में अवसाद है। यह साथ देनेवाले पास-पडोस की कविता है जिसमें एक पल केलिए हमारा अपना संघर्ष, असंख्य जीवन छवियाँ और भाषा में हमारी असमाप्त संभावनाएँ विन्यस्त और पारदर्शी होती चलती है। लगातार मनुष्य के अन्तःस्थल में विचरते रहने के कारण, इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ अति सूक्ष्म मानसिक कार्य कलापों को वाणी देने का कार्य करती हैं। इस संग्रह को उसकी

---

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी : भूमिका, प्र. सं. 1989

मनोभूमि के अनुकूल उन्होंने अवसाद ऋंगार, अवकाश, मुक्ति जैसे भागों में विभाजित किया है। यहाँ कवि ने मृत्यु को आसक्ति से समझने, रति की सघनता को खोजने, पाने, पास पड़ोस को शब्दों के माध्यम से देखने-टटोलने और कविता में गद्य की खिलवाड़ करने की कोशिश की है।[1] अशोक वाजपेयी एकमात्र कवि हैं जिन्होंने काल का वह प्रमुख पक्ष मृत्यु से आहत होकर अनाहत जिजीविषा दर्शायी है।

अन्त के बाद
हम समाप्त नहीं होंगे-
यही जीवन के आसपास
मँडराएँगें
यही खिलेंगे गन्ध बनकर,
बहेंगे हवा बनकर
छाएँगे स्मृति बनकर।[2]

इस संग्रह का अंतिम भाग गद्य कविताओं का है। 'मुक्ति' शीर्षक भाग में उन्होंने अपनी काव्य संवेदनाओं को नये रूप में ढालने का प्रयास किया है। 1994 में इस संकलन के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

सन् 1992 में उनकी प्रथम लंबी कविता बहुरि अकेला निकली जो संगीतकार कुमार गन्धर्व के आकस्मिक मृत्यु पर विदागीत के रूप में लिखी गयी

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी : भूमिका, प्र. सं. 1991
2. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 26, प्र. सं. 1991

थी। इसमें इक्कीस कविताओं की एक ऋंखला है साथ ही निबंध भी है। मृत्यु और आसक्ति इस संग्रह का प्रतिपाद्य है। अशोक वाजपेयी पर कुमार गन्धर्व का गहरा प्रभाव पड़ा है जिनकी मृत्यु उनके लिए एक मर्मान्तक घटना थी।

यह सयानी होती ढीली पड़ती त्वचा में
नवजात सी कँपकँपी क्यों?
पतझरे वृक्ष की किसी दिगम्बर शाखा पर
एक किसलय की हरी सुगबुगाहट कैसी?
यह मृत्यु की खोखली आँखों में
जासूस की तरह
ताक झाँक करता जीवन कहाँ से?[1]

इस संग्रह में स्मृति उत्सुकता, विकलता, जिज्ञासा, अवसाद, जिजीविषा, समकालीनता, निरन्तरता आदि का संगीतिक सा संगुफन है।

सन् 1995 में उनका संग्रह 'अविन्यों' प्रकाशित हुआ जो कुल उन्नीस दिनों की अवधि में लिखा गया था। दक्षिण फ्रान्स के अविन्यो शहर की एक प्राचीन इमारत में रहकर ये कवितायें लिखी गयी थी। यह एक प्राचीन मोनास्ट्री थी जहाँ कार्थूसियन संप्रदाय के संत प्रायः मौन रहकर अपनी साधना करते थे। पुनर्निमिति के बाद पिछले कुछ सालों से यहाँ 'रंगमंच' और साहित्य का एक केन्द्र स्थापित हुआ

---

1. बहुरि अकेला (तिनका तिनका भाग-2) अशोक वाजपेयी, पृ. 170, प्र. सं. 1994

था वहाँ विश्व के कोने-कोने से रंगकर्मी, कलाकार, लेखक आदि अपना सृजनकार्य बिना किसी बाधा के साथ करने केलिए आमंत्रित किए जाते हैं। 'अवित्यो' संकलन में ईश्वर की उपस्थिति और अनुपस्थिति के सनातन द्वन्द्व की कविताएँ संकलित हैं।

कविता में अलिखित शब्द की तरह
अक्षर और अलक्षित
भाषा की कगार पर खडा
मैं उसे किस नाम से पुकारूँ
जो उसे मुक्त करे
आकाश में, पृथ्वी में
जल, पावक और समीर में?[1]

कवि जानबूझकर मध्यकाल के कई उपादानों को समकालीन प्रसंग में पुनराविष्कृत करते हैं। यदि समकालीन दौर के ज्यादातर कवियों का विषय, राजनीति, सांप्रदायिकता, दलित जीवन आदि है तो अशोकजी के यहाँ आध्यात्मिकता का पुनर्वास हम पाते हैं।

सन् 1998 में प्रकाशित 'अभी कुछ और' संग्रह की लगभग सभी कविताएं पिछले बडे संग्रह 'कहीं नहीं वहीं' के बाद और 'बहुरि अकेला' और अविन्यों संग्रहों के अलावा लिखी गयी है। इस संग्रह का कथ्य पहले ही जैसा है। जीवन और भाषा

1. अविन्यों (तिनका तिनका भाग-2) अशोक वाजपेयी, पृ. 18, प्र. सं. 1995

की, उपस्थिति और अवसाद को, अपने और दूसरे के होने के आशय और संयोग को कविता में सहेजने ओर विन्यस्त करने का प्रयत्न है।

एक दिन मुरझाने की प्रतीक्षा से दुःखी
या अंततः झर जाने की नियति से उदास नहीं है
अमलतास या कि गुलमोहर
उन्हें जितना समय मिला है
उसमें प्रसन्न खिले हैं
इस समय को अपने रंग में रँगते हुए
और पँखुरी पँखुरी चुनते और बिखेरते सुख
मैं इसी सुख का प्रस्ताव करता हूँ।[1]

प्रकृति अशोक वाजपेयी की कविता का नितांत सान्निध्य है। प्रकृति का कोमल एवं गहरा अहसास सभी कविताओं में है। बीहड समय में भी प्रकृति का हँसना फूल खिलना आदि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। इसीसे कवि सुख का प्रस्ताव करता है। इतने साल काव्यक्षेत्र में सक्रिय रहने के बाद भी कवि के मन में बराबर यह खयाल रहता है कि कविता में जीना 'अभी कुछ और बाकी है। यह बोध इस दौर में कवि मन को हमेशा सताता रहा है।

'समय के पास समय' 2000 में प्रकाशित संग्रह है। इसमें उन्होंने सच, सपना, इतिहास, समय, भविष्य आदि पर कुम्हार, लुहार, मछुआरे, बढ़ई, कबाडी

1. अथी कुछ और (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 259, प्र.सं. 1998

और कुँजडे जैसे चरित्रों के मर्मकथनों से अपनी पूरी ऐन्द्रिकता और चारित्रिकता के साथ प्रगट किया है। इस संग्रह की कविताओं में अनुभवों को कम व्यक्त कर रहे हैं। कविता के केन्द्र में राग, बिम्ब और संगीत कम है, जबकि गद्य में विचार, तथ्य और तर्क केन्द्र में होते हैं जो इनमें प्रचुर मात्रा में हैं। इस संग्रह की कविताओं में आकर अशोक वाजपेयी की आवाज़ नए प्रश्न पूछती, नई बेचैनी व्यक्त करती और कविता को वहाँ ले जाने की कोशिश करती है जहाँ वह अक्सर नहीं जाती है। "मैं जानता हूँ कि दुनिया को किसी खिड़की से नज़र आते / हरे-भरे दृश्य में नहीं बदला जा सकता / पर मैं क्या करूँ कि मेरे हाथ इस सूखी बेजान लकड़ी को छीलते हुए / हरे भरेपन का एक सपना देखते हैं और कुढ़ते हैं / कि यका चौंध से भटी दुनिया में वह संभव नहीं।[1] इस दौर में उनका काव्यदृश्य सयानी आत्मालोचना से आलोकित है। कविता उनके लिए अब तक अटूट उलझाव का साक्ष्य है।

अशोक वाजपेयी का दसवाँ काव्यसंग्रह है 'इबारत से गिरी मात्राएँ।' 2002 में इसका प्रकाशन हुआ है। नन्दकिशोर आचार्य के अनुसार अशोक वाजपेयी की कविता समय के धूल-धक्कड, खून कीचड, राख से जलने या भस्म होने से बचे हुए शब्द उठाकर उनमें पवित्रता की खनखनाहट सुनती और इसप्रकार शब्द को पुनः एक विश्वसनीयता देना चाहती है।"[2] कविता की प्रक्रिया अर्थात् निजी

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 21, प्र. सं. 2000
2. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. सं. 2001

सत्य को व्यापक सत्य में रूपान्तरित करने के लिए ये कविताएँ आधुनिक हिन्दी कविता में एक निजी भाषा और काव्याबोध का आविष्कार करती हैं। अशोक वाजपेयी की काव्य-यात्रा अधिक गंभीर किन्तु भाषा सौष्ठव में नयी विधि के साथ चल रही है। यह संग्रह इसका निदान है।

शब्द गिरते हैं हमेशा धरती पर जिस पर
गिरता है खून
उडती है धूल
बनता है कीचड़[1]

वे कह रहे हैं कि शब्द समय पर नहीं धरती पर गिरता है। जिस धरती लाखों के खून से लथ पथ है। मिट्टी अब गरम गरम होकर उसमें से धूल उड रहे हैं, वही मिट्टी कभी कीचड बन जाता भी है। धरती असंख्य ऐतिहासिक घटनाओं का गवाह हो चुकी है और स्वयं सब कुछ को भोग चुकी है। कवि के अनुसार उस त्रासद स्थिति से धरती को संभालने के लिए शब्द सार्थक भूमिका निभाते है। शब्द और अर्थ की गहराई वास्तव में सत्य की गहराई को माप रही है।

अशोक वाजपेयी का ग्यारहवाँ संकलन है 'कुछ रफू कुछ थिगडे'। इस संकलन की कविताओं तक आकर अशोक वाजपेयी में आंतरिक एवं सूक्ष्म

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी - पृ. 19, प्र. सं. 2001

सच्चाइयों से तादात्म्य प्राप्त करने की इच्छा अधिक तीव्र होती दिखायी देती है। कविता पर उनके विश्वास में कोई कमी नहीं आयी है बल्कि कवि अब भी हँसना चाहता है।

"मैं हँस रहा हूँ
क्योंकि जो देवता रोने गिडगिडाने से नहीं पसीजते
वे अपेक्षा भरी हँसी से हो सकता है जाग जाएँ
और डाह से कुछ हरकत में आएं।"[1]

कवि में समय का तीखा एहसास है। लेकिन संकटापन्न स्थिति में कवि निराश होने के लिए तैयार नहीं। कविता इसीलिए उनके लिए एक घर है, जहाँ वे स्मृतियों में, सपनों में विश्वास रखते हैं। समय की विडम्बनाजन्य उपस्थिति इस संग्रह में व्यापक है। समय का यह परोक्ष अंकन कवि को आधुनिक बनाता है। लगभग पचास सालों तक फैली उनकी काव्ययात्रा बिना अवरोध से निरन्तर चलती रहती है। इस लंबे अंतराल में देश और काल उसके रंग, संवेदना काफी बदल चुके हैं। अधिकांश रचनाकारों की रचना में यह संवेदनागत परिवर्तन लक्षित होता है। समयानुसार कथ्य ही ऐसी रचनाओं में बोलते हैं। मगर अशोक वाजपेयी की कविता की संवेदना में परिवर्तन नहीं आया है। कवि को कविता करने के लिए जिन-जिन पहलुओं ने प्रारंभ में उकसाया था, अब तक वही उम्मीद, जिजीविषा अवसाद, उत्तरोत्तर तीव्र होकर दिखायी पड़ता है। अर्थात् अशोक वाजपेयी ने अपने विषय को समयानुसार नहीं

---

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 44, प्र. सं. 2004

बदला। स्थायी रूप में लगभग समान विचारों को तीव्रता के साथ प्रतिध्वनित करने का प्रयास जारी है, क्योंकि कविता से उन्होंने जो चाहा वह अब तक संभव नहीं हो पाया है। 'अभी बहुत कुछ करने को बाकी रह गया है' एहसास कवि की सृजनात्मकता को पवित्र एवं दायित्वपूर्ण बना रहा है।

कविता अशोक वाजेपेयी केलिए रचने का कर्म मात्र नहीं हैं। वह उनकेलिए जीने का साधन भी है। कविता के प्रति उनकी यह आस्थावादी दृष्टि उनके जीवन के आरंभिक चरण में भी रही जिसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। इसमें कवि का का विकास ही नहीं है बल्कि कविता का विकास भी अनुभव किया जा सकता है।

.....🕮.....

अध्याय - 2

# अशोक वाजपेयी की कविता में मानवीय संबंधों की स्थितियाँ

## मानवीय संबंधों का कविता-पक्ष

सार्थक कविता अंततः मनुष्योन्मुखी होती है। यह कविता की एक वायवीय स्थिति नहीं है। यह कविता में सक्रिय जीवंतता है। इस जैविकता के कारण ही कविता अपने समय को आत्मसाथ कर पाती है। अतः यह कहा जा सकता है कविता में मनुष्योन्मुखता का एक सामान्य पक्ष, यदि वह जीवंत और गतिशील हो तो उत्तरोत्तर विकसित हो सकता है। मनुष्योन्मुखता के विविध रंग हैं जो कविता में बहुविध छवियों में अभिव्यंजित होते हैं। परिवार से संबंधित या परिवारिक रिश्तों से संबंधित कविताएँ उनकी आधारभूमि के सार्थक होने पर अलग-अलग संदर्भों में सार्थक होती है।

संस्कृति के विघटन के इस युग में मनुष्य के पक्ष में बोलनेवाले कवियों में अशोक वाजपेयी का स्थान विशेष उल्लेखनीय है। उल्लेखनीय इसीलिए है कि अशोक वाजपेयी समकालीन समय में अपने अलग स्वर की पहचान रखनेवाले है। जहाँ समकालीन कवि समाज राजनीति का यथार्थ चित्रण खुलेआम कर रहा है वहाँ अशोक वाजपेयी की कविता एक अलग संवेदना को, तेवर को अपनाती है। प्रचलित एवं जनाकीर्ण राजमार्ग से हटकर अपने लिए एक अलग पगडण्डी स्वयं

तय करनेवाले अशोक वाजपेयी हमेशा अपने सृजनशील विचारों को लेकर उपस्थित हैं। समकालीन दौर का, इतिहास का, संस्कृति का और उस पर हुए अत्याचार का सीधा प्रस्तुतीकरण उनके यहाँ नहीं के बराबर है। अशोक वाजपेयी हृदय के अन्दरूनी हलचल को मापनेवाले हैं। मनुष्य की मूल संवेदना की ओर, अन्तर्जगत की ओर निरन्तर यात्रा करनेवाला एक अथक कवि मन उनकी कविताओं के मूल में सृजनरत है।

आज के सन्दर्भ में अधिकांश कवि अवाम के पक्ष में है। यह प्रयास अति आवश्यक भी है। हाशिये पर फेंके जाने वाले लघुमानव को कविता के केन्द्र में लाना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है। इसकेलिए अन्तर्ध्वनियों से विहीन सपाट, रूखी सूखी भाषा का इस्तेमाल कवि लोग कर रहे है। यह भी ज़रूरी है। कविता की विषयवस्तु को लेकर प्रायः यह विवाद रहा है कि कविता केलिए स्पृहणीय विषयवस्तु कौन सी है? मुखर सामाजिकता या अमुखर जीवन संदर्भ। दोनों स्थितियों में कविता अपना रचनात्मक दायित्व निभा सकती है। पर समय की माँग एवं कविता का मुख्य सरोकार कविता की सामाजिकता को सुरक्षित रखने के पक्ष में है। अशोक वाजपेयी कविता के अमुख्य पक्ष के समर्थक कवि हैं। वे कविता को अन्य कवियों की तुलना में, भिन्न दृष्टि से देखने के पक्षधर हैं। उनके कुछ वक्तव्यों से इसका पता लग जाता है। अपनी प्रथम आलोचना पुस्तक 'फिलहाल' में कविता संबंधी उनका विचार

उपलब्ध है "कविता मनुष्य की विश्वसनीय और समावेशी परिभाषा है।"[1] कविता संबंधी एक कवि के मुँह से सुनना वास्तव में कविता से सीधे साक्षात्कृत होने के समान है। अपनी कविताओं के मूल उद्देश्य को कविता के द्वारा और अपनी अन्य पुस्तकों के द्वारा उन्होंने दिखाया है। आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी की भूमिका में उन्होंने यह बात व्यक्त की है कि कविता कवि का अन्य जीवन है, भले ही उसके अपने भौतिक मूलजीवन से वह गहरा जुडा होता है और उसके बिना संभव नहीं है। कविता कहीं न कहीं जीवन को बचाती है। कई बार लगता है कि कविता वही लोग लिखते और पढते हैं जो जीवन में सिर्फ रस नहीं लेना चाहते बल्कि उसमें कुछ बचाना चाहते हैं।[2] कविता के आस पास इस तरह के कई विचार अशोक वाजपेयी की रचनाओं में उपलब्ध हैं।

जीवन के संगीत को, संबंधों की ऊष्मलता को, परंपरा के निरंतर विन्यास को बचा पाना ही उनके मुख्य सरोकार हैं। कविता में लगभग भुला दी गयी अन्तर्ध्वनियों को पुनः अवस्थित करने की इच्छा हमेशा अशोक वाजपेयी में सक्रिय है। भोपाल में आयोजित एक कवि सामगम में डॉ. नामवर सिंह का यह वक्तव्य एक 'आलोचकीय विडंबना' है कि 'कविता की वापसी' सही अर्थ में तभी होगी जब

1. फिलहाल - अशोक वाजपेयी - दृश्यलेख - पृ. 9, प्र. सं. 1966
2. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 11, प्र. सं. 2001

कविता में लिरिक की वापसी हो सकेगी।'। क्योंकि यह वह नामवरजी ही थे जिन्होने लिरिकल संरचना और संवेदना को किनारे पर धकेलते हुए नाटकीय संरचना के नाम पर सपाट बयानी पर आधारित काव्य संरचना को कविता की केन्द्रस्थ स्थापना के रूप में प्रस्तावित किया था।"[1] यह कविता की अनिवार्यता है। जीवन के बाह्य और आन्तरिक पक्ष में से एक को अलग कर दूसरे को प्रमुख या अप्रमुख कहना संभव नहीं है। चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व रूपायन, और प्रतिष्ठा की स्थापना में ये दोनों पक्ष समान रूप से प्रमुख हैं।

धूमिल और मुक्तिबोध के काव्यसंघर्ष के प्रति गहरे सम्मान के बावजूद अशोक वाजपेयी की रचनाओं में इसका सीधा प्रभाव नहीं दिखायी देता। इनकी रचनाओं में आक्रोशपूर्ण वक्तव्यात्मकता के बजाय एक गहरी काव्यानुभूति है जिसके कारण अशोक वाजपेयी की कविता का लहजा अंतरंग है। प्रकृति और आत्मीय संबंधों की स्मृति केन्द्र में है और चालू विद्रोही भंगिमाओं तथा भावुकता के अतिरेक से दूर यह कविता एक गहरे काव्य संयम के साथ मानव होने का एहसास व्यक्त करती है। मानव संबंधों के कई ऊष्मल स्मृतियों के द्वारा घर और परिवार की ओर जाने की अनियंत्रित इच्छा अशोक वाजपेयी में प्रबल है। मनुष्य ही उनकी कविताओं के केन्द्र में है। वह कभी अपनी माँ होती है, कभी एक बुढिया या तो कभी एक

1. अनुभव का भव - नन्दकिशोर आचार्य - पृ. प्र. सं. 1994

कलाकार। माँ-बाप, बेटा-बहू, भाई-बहन, घर, नर्तकी, संगीतकार, चित्रकार, आदि पर लिखी गयी कविताओं में संबंधों का गहरा अनुभव साक्ष्य देखने को मिलता हैं। इस तरह उनकी कविता में संबंधों के कई स्तर दृष्टिगोचर होते हैं। संबंधों की अनुभूति का मूल प्रेम है। इसीलिए इन कविताओं में प्रेम के असंख्य अर्थस्तर विन्यस्त होते दिखायी देते हैं।

प्रेम एक अटूट परंपरा थी। वह आज गायब हो रही है। सारे समकालीन विपर्ययों और चकाचौंध से लैंस होकर मनुष्य अपनी कोमल अनुभूतियों से दूर जा रहे हैं। ये अनुभूतियाँ जीवन की ऊर्जा हैं प्रेरकशक्ति हैं और मनुष्य बनाने से सहायक भी है। यह प्रेम प्रकृति के अणु-परमाणु से लेकर अपने से, आस पडोसियों से समस्त मानव जाति से हो सकते है। एक-एक में प्रेम के अलग-अलग रोमांच, कंपन, एवं संगीत है। एक सर्जक विशेषकर एक कवि इनमें से दूर नहीं रह सकता। कविता में संबंधों की उपस्थिति और संबंधों में कविता की उपस्थिति दोनों का दृश्य अशोक वाजपेयी की कविता हमारे सामने रख देती है। इसमें संबंधों की आत्मीयता एवं अंतरंगता का अनुभव अशोक वाजपेयी में कविता के जन्म के लिए कारण बन जाता है। यह पवित्र एवं अपरिभाषेय अलौक आनन्द की अनुभूति का परिणाम ही है।

## घर, परिवार और पडोस की कविता

अशोक वाजपेयी मूलतः पास पडोस के कवि हैं। जिस सागर शहर में उनका पालन पोषण हुआ था, उस परिवेश का उनमें गहरा प्रभाव पडा है। सागर शहर का अपना घर, सामनेवाले नाना-नानी के घर, बीचवाले सडक की आवाजाही, मौलश्री के पेड, कठ्चन्दन के फूल आदि प्रारंभ में उनके प्रभाव के भूगोल तय कर रहे थे। सागर शहर से बाहर जाने के बाद उनके प्रभाव का भूगोल एकदम फैल जाता है। मगर प्रिय सागर शहर और आत्मीय जनों की उपस्थिति निरन्तर उनके साथ रही। स्मृति बनकर, अन्तर्ध्वनि बनकर। लेकिन बाद में उनकी कविता में स्थायी भाव सा जिस अवसाद ने घेर लिया जो इस शहर से दूर रहने के कारण उत्पन्न हुआ है। इस अवसाद की तीव्रता बाद के व्यस्त जीवन में घर की आत्मीयता की चाह गहराती है। इसलिए उनकी कविता में घर और पारिवारिक जनों की उपस्थिति बार-बार हुई।

घर सब केलिए सुरक्षित आश्रय स्थान है। वहाँ निर्भय होकर कभी भी वह आश्रय ले सकता है। दुनिया भर फैली हुई आतंकित हवा के प्रहार से पीड़ित मनुष्य को घर चाहिए। कुछ कवि ऐसे हैं जो कविता में घर बसाने की आदम्य इच्छा प्रकट करते हैं। कहाँ मैं एक 'घर' बनाऊँगा? प्रश्न उनके भीतर निरन्तर उठताहै। अशोक वाजपेयी इनमें से है।

अशोक वाजपेयी की काव्य प्रतिमाएँ उनके सृजन-संकल्प, बोध-रूप और पुरुषार्थ-रूप तथा अनुभूति-अभिव्यक्ति रूप की द्योतक हैं। ये मुख्यतः उनकी आन्तरिक कल्पना शक्ति और अनुभूति सामर्थ्य से समृद्ध चैतन्य क्रिया की ही रचनाएँ हैं।[1] घर, परिवार और पड़ोस ये तीन ऐसे अभिप्राय है जो बहुत हद तक हमारी ज़िन्दगी की सचाई, संभावना, सरहदें, सुख-दुःख, उलझनें, व्याप्ति जटिलताएँ, अर्थात मनुष्य होने के अनुभव के बड़े हिस्से को निर्धारित करते हैं।[2] प्रेम, मृत्यु और कलाओं के साथ ही घर और पडोस भी उनकी कविता का मुख्य सरोकार है।

घर था शुरू में, फिर बसाया भी, अब अरसे से घर की तलाश है।[3] माँ के लिए या माँ पर अशोक ने जो कविताएँ लिखी हैं, उनमें करुणा और प्रेम, की अनुभूति है। ये कविताएँ सर्वाधिक विशिष्ट हैं। करुणा और प्रेम, दोनों की सघनतम अनुभूति और समृद्धतम कल्पनाएँ माँ केंद्रित कविताओं में ही है या फिर तोतों को भाग-भाग कर उडाती, फलों को और पृथ्वी को बचाती, सहेजकर दुलारती खड़ी हरीतिमा से चमकती बेटी की काव्य प्रतिमा में।[4] अपनी आसन्न प्रसवा माँ के लिए लिखी गयी कविताओं में माँ की करुणा वात्सल्य का सुख मुखरित है -

1. साक्षात्कार - 'करुणा और प्रेम के कवि की भाषा' - पंकज, जनवरी-मार्च. पृ. 108, प्र. सं. 1995
2. पुरखों की परछी में धूप - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. स. 2003
3. वही - भूमिका - प्र. स. 2003
4. साक्षात्कार - 'करुणा और प्रेम के कवि की भाषा - पंकज, जनवरी-मार्च, पृ. 109, प्र. सं. 1995

काँच के आसमानी टुकडें
ओर उनपर बिछलती सूर्य की करुणा
तुम उन सब को सहेज लेती हो
क्योंकि तुम्हारी अपनी खिडकी के
आठों काँच सुरक्षित हैं
और सूर्य की करुणा
तुम्हारे मुँडेरों भी रोज़ बरस जाती है।[1]

घर में पहली संतान होने के कारण अशोक वाजपेयी को लाड़ प्यार बहुत मिला था। माँ जिसे वह दिदिया पुकारता था बुन्देलखण्ड की थी। संयम स्वभाववाली माँ के साथ अशोक वाजपेयी का निकट आत्मीय संबंध था। बाद में जब वह माँ बनने की तैयारियाँ कर रही है और बच्चे का एक साधना के रूप में देखभाल करती है। अशोक वाजपेयी इन सभी के गवाह हो चुके थे। 'माँ' शीर्षक दूसरी कविता स्त्री मन के अन्तस्थल का आयतन है। शरीर के साथ हुए अपमान की याद में शरीर की घृणा में हृदय पश्चाताप से डूबने लगता है। अपने बच्चों के साथ और सारे घरवालों से करुणा एवं प्यार से व्यवहार करनेवाली माँ बेटे अशोक वाजपेयी में करुणा का भाव जागृत करती है। माँ के प्रति इस प्यार को कवि ने अपनी प्रारंभिक कविता 'आसन्न प्रसवा माँ के लिए तीन गीत' में लिखा है। घर भर के लिए यातना सहनेवाली माँ की

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) अशोकवाजपेयी - पृ. 29, प्र. सं. 1966

प्रसवपीडा भी सहना और सहने के बारे में सोचना बेटे को असह्य है। उनकी बहुत सारी कविताओं में माँ की व्यस्तता एवं शारीरिक कसरतें दिखाने वाले दृश्य हैं। लेकिन बगल में सोए बच्चे के कोमल शरीर के स्पर्श मात्र से उनका भाव बदल जाता है ओर-

तुम्हारा हृदय
एक प्रार्थना सा उनकी ओर बढने लगती है
भोर होने के बहुत पहले
तुम्हारी दैनिक भोर होती है[1]

माँ की ममता और वात्सल्य की स्मृति कविता केलिए अन्दरुनी शक्ति प्रदान करती है। अरुण कमल का कथन ध्यातव्य है कि अशोक वाजपेयी की कविताओं की मूल भूमि है ठेठ निम्न मध्यवर्गीय कस्बाई जीवन जिसके प्रति एक अविच्छिन्न अनुराग इन कविताओं में मिलता है। दैनंदिन के मानव-संबंध, माँ-बाप, भाई-बहन, बेटा-बेटी, घर-परिवार, पुराने मुहल्ले और साथ-साथ बढे रूख पात, पशु-पक्षी यही वो जीवन है जो शुरू से अंत तक अशोक वाजपेयी की कविताओं का आश्रय है।[2] 'इन्हीं दिनों' शीर्षक कविता में सधे, स्थिर स्वर में, लगभग आवेगहीन निरपेक्षता के साथ माँ की मृत्यु का बखान है।

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 33, प्र. सं. 1996
2. कविता और समय - अरुण कमल - पृ. 142, प्र. स. 1999

पिछले वर्ष इन्हीं दिनों
उसने चुपचाप
अपनी पीडा में
अंत की ओर आखिरकार जाने की
तैयारी शुरु की होगी[1]

रिश्तों की ऊष्मलता को पुनराविष्कृत करने लायक कविताएँ हैं - 'अमर मेरी काया', 'स्वर्ग में नरक', और 'पिता के जूते' आदि। 'पिता के जूते' शीर्षक कविता पिता की मृत्यु से व्युत्पन्न अवसाद का उम्मीद में परिवर्तित होने का परिणाम है। कठोर स्वभाव वाले पिता से उनका निकट संबंध तो नहीं था। लेकिन पिता में जो सुन्दर सच निहित था उसे खोने से कवि मन दुःखित है। इसलिए कवि, पिता द्वारा रखे गये उन जूतों की, नन्हें पैरों की प्रतीक्षा पर दृष्टि गढाते हैं।

पैर नहीं है
और न ही वह आदमी
जो उन्हें उस कोने में रखकर
चुपचाप चला गया
किसी और चबूतरे पर बैठकर
आगे की यात्रा तय करने के लिए
*  *  *  *
वे जूते सपना देखते है नन्हे पैरों का
जिनकेलिए वे हमेशा बड़े साबित होंगे।[1]

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 119 प्र. सं. 1984
2. वही - पृ. 126, प्र. सं. 1984

घर का मोह आरंभिक स्थिरता और सुरक्षा का मोह बारंबार इन की कविताओं में व्यक्त होता है। तोतों से बची पृथ्वी सरीखी कविताओं में अपने घर, परिवार को बचाने की कवि दृष्टि अनुपम है। शहर में भी हमारे घर के रास्ते वे जंगल जाते हैं और लौट जाते हैं। अनगिनत तोतों की हरी लकीरें इस घर के आकाश से आती-जाती है। उनमें से कुछ कवि के घर में ठहरते है। कई बार कवि और बेटी इस पर ध्यान देने लगते हैं कि तोतों का कौन-सा दल हमारे पेडों पर ठहरेगा? क्योंकि तोते तो घरवालों को देखकर नहीं पेडों और उन पर लगे फलों पर नज़रें डालकर ठहरते हैं। थोड़ी देर के बाद अधखाए फल की तरह पृथ्वी को छोड़कर वे चले जाते हैं -

मेरी बेटी
भाग-भागकर उड़ाती है तोतों को,
बचाती है फलों को
पृथ्वी को
हरीतिमा से चमकती
खड़ी रहती है मेरी बेटी
पृथ्वी को सहेजकर दुलराते हुए[1]

जीवन के उन्मुक्त उत्सव के क्षण में ही विनाश एवं प्रकृत्या प्रदत्त स्वाभाविकता को तहस नहस करने से कवि मन दुःखित है। बारीश के दिनों में, पानी से सनी हुई

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-1) अशोक वाजपेयी, पृ. 210, 1996

मिट्टी से हज़ारों पतंग का उत्मुक्त आकारा में उठना जीवन का उत्सव मनाना ही है। देखने वालों के लिए भी। लेकिन अगले क्षण में ही पक्षियों का उनके ऊपर झपटना, वह भी जीवन का उत्सव है लेकिन तहस-नहस और अवसान की वेदना हममें बाकी रह जाती है। तोतों से बची पृथ्वी कविता में अपने बच्चे से पृथ्वी को बचानेवाले कवि मन का उम्मीद इसी वेदना से उत्पन्न हुआ है। कवि प्रकृति को साथ ही साथ जीवन को भी उत्मुक्त एवं उत्सव के क्षणों में तब्दील होने के इन्तज़ार के कवि हैं। अशोक वाजपेयी का काव्यदृश्य और प्रकृति दृश्य इसप्रकार दूसरा या अन्य प्राकृतिक चित्रों में खुलता है जो नितांत आश्चर्यदायी एवं मनोहारी है। बेटी और बेटे पर कवि की उम्मीद है। उन्हें देखकर कवि-मन में असंख्य प्राकृतिक दृश्य दौड़ आ रहे हैं। बेटी की मासूमियता और भोलेपन कवि को प्रभावित करने लायक हैं क्योंकि उसे पता ही नहीं कि इस पृथ्वी की विराटता, रहस्यमयता, कितनी है? पृथ्वी को कंधे पर उठाये मेरी बेटी संसार के उजालों की ओर भाग रही है। कवि इतना तो उम्मीद रखता है कि बच्चों के हाथों में संसार हमेशा उज्वल रहेगा। इसलिए बेटी और बेटे-बहू के लिए कवि मन प्रार्थना निरत है।

> उसे सख्त दुनिया में संघर्ष करने की इच्छा और शक्ति दो,
> पर खिली रहने दो उसके मन में कोमल हरी पत्तियाँ[1]

---

1. अविन्यों - (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 233, प्र. सं. 1995

इस कविता में जीवन के दो रूप स्पष्ट लक्षित होते हैं। एक है जीवन का संघर्ष-क्षेत्र जिससे मुँह मोड़ा नहीं जा सकता। इसलिए संघर्ष करने की इच्छा और शक्ति की बात कही गयी है। पर साथ ही मन में कोमल हँसी, पत्तियों के खिले रहने की बात कही गयी है। अतः कविता का दूसरा पक्ष जीवन का वह परिदृश्य है जहाँ हमारी संवेदना की संभावनाएँ विकसित होती है। बेटे और बहु से कवि का कहना एक बुजुर्ग का कहना मात्र नहीं है।

और हमेशा याद रखें कि
आँखें सिर्फ सच देखने के लिए ही नहीं
सपना देखने के लिए भी हैं।[1]

अशोक वाजपेयी की कविता उसी घर की खोज है जो स्मृति और कल्पना दोनों प्रांतरों में बसा है। वह घर पूर्णता का निवास है। उनकी जीवन दृष्टि का पुंज। मनुष्य का जीवन निरंतर उसी घर की खोज है। कला और काव्य उस खोज की सर्वाधिक संघनित अभिव्यक्ति है। ऐसी कविताएँ हमारे रोज़-ब-रोज़ के जटिल, कठिनाइयों भरे जीवन को लाँघकर एक समानांतर संसार का सृजन करती हैं। यहाँ हमें वर्तमान का वह चेहरा नहीं मिलता जिसके हम आदी हैं। हालाँकि कविताएँ पारिवारिक संबंधों से आरंभ होती है, पर वहाँ रुकती नहीं, बल्कि बृहत्तर आशयों की ओर बढ़ती है।[2]

---

1. अविन्यों - (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 234, प्र. सं. 1995
2. कविता और समय - अरुण कमल, पृ. 143, प्र. स. 1999

जिसे कवि स्वयं 'ईश्वरहीन आध्यात्मिकता' कहते हैं। संबंधों का ऐसा पवित्र स्तर जो सभी समस्याओं का आत्यंतिक हल भी है। अशोक वाजपेयी के रचना संसार की यही विशेषता है। समय का दबाव लगातार बना रहता है, लेकिन उस समय भी घर की तलाश कहीं न कहीं उसी अनश्वरता की तलाश है जो मानव की सनातन समस्या है।

बच्चे एक दिन यमलोक पर धावा बोलेंगे
और छुडा ले आएँगे
सब पुरखों को
वापस पृथ्वी पर
और फिर आँखें फाड़े।
विस्मय से सुनते रहेंगे
एक अनंत कहानी।
सदियों तक।[1]

बच्चों पर कवि की उम्मीद है कि प्रार्थना के शब्दों की तरह वह पवित्र और दीप्त है। स्वयं प्रार्थना की तरह बच्चे का अनुभव कवि को और दुनिया को पवित्र बनाता है। इसलिए पोते का जन्म कवि में कोमल अनुभूति पैदा करता है। अस्पताल के शोर भरे वातावरण में अचानक बच्चे का रोना कवि को लगता है कि ईश्वर एक बार फिर अपने दरवाज़ा खोलकर पृथ्वी को देख रहे हैं।

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका भाग-1) अशोक वाजपेयी, पृ. 236, प्र. सं. 1986

घर की 'तलाश' की कविताएँ अशोक वाजपेयी के रचना संसार में बीच बीच में पायी जाती है। 'तलाश' शीर्षक कविता में अंधेरे रास्ते से मिली दूसरी शताब्दी की बच्ची (वह भी घर पहूँचने की कोशिश में थी) के साथ कवि भी निकलता है। निकलते वक्त कवि मन शंकित है कि यह घर कहाँ होगा? वहाँ मैं कब पहूँचूँगा? लेकिन जो बच्ची साथ मिली थी -

वह रास्ता कुछ भूल-सा गई थी,
पर उसे विश्वास था कि आगे जाकर
ठीक मोड आ जाएगा
और वह जल्दी ही घर पहूँच जाएगी।
उसे डर सिर्फ यह था कि
उसके देर से पहूँचने के कारण
क्रोध से उसका छोटा भाई
उसकी पोथियाँ तहस-नहस न कर दे।[1]

शताब्दियों पुराने मानवेतिहास में मनुष्यत्व को कुचल डालने की प्रवृत्ति रही है। धर्म, राजनीति, समाज, संस्कृति आदि जो मनुष्य के साथ संबंध रखने वाले हैं, सब किसी पर अत्याचार की श्रृंखला बढती आ रही है। आज के दौर में आकर सबसे खतरा संस्कृति को है। आध्यात्मिक शक्ति का पुंज जिन-जिन धार्मिक ग्रन्थों में था वे सब आज गलत पाठ-पठन एवं विचार से आक्रमण का दयनीय शिकार बन गया है। घर

---

1. तत्पुरुष - (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 297, प्र. सं. 1989

की तलाश उसके बीच में भी ज़ारी रखने के आग्रही कवि और उन्हें धैर्य देनेवाले बच्चे डरते हैं कि घर में पहूँचने से पूर्व आनेवाली पीढी उन मूल्यों को तहस-नहस कर देगा क्या? सांस्कृतिक संकट की यह गहरी पहचान कविता की अन्दरुनी संवेदना बनकर जीवंत है।

'अपने साढ़े छः महीने के पोते के लिए एक युद्धगीत शीर्षक कविता में भी समय की सारी तबाही के बीच में भी मानव को जीवित रहने की आवश्यकता देखने को मिलती है। जीवित रहना पड़ता है जैसे एहसास के मूल में समय की सही पहचान निहित है। पोते इस दुनिया में देवताओं और पुरखों के आर्शीपुष्पों की वर्षा के बीच आया था। एक नम किरणाघात, एक नए स्वर, एक नए रंग की तरह। उन्हीं दिनों बर्फीली आँधियों के बीच सरहदों में घुसपैठिए घुसे थे। यह घुसपैठना जो युद्ध का कारण बन जाता है। 'युद्ध' कवि के अनुसार एक पवित्र शब्द नहीं है।

तेरे शब्दकोष में न हो अभी कोई शब्द
तेरी सच-कम-सपना अधिक देखनेवाली आँखों में
अभी समा न पाइ हो यह दुनिया अपनी सारी रंगतों के साथ,
चिडियों, बरतनों, झुनझुनों, हवा की सरसराहट,
चीज़ों के गिरने, हमारे प्यार पुचकार के अलावा
तूने भले न सुनी हो और कोई आवाज़,
पर हम सब, हम और तू भी / मेरे पोते
एक ऐसी दुनिया में है जहाँ हर रोज़

कुछ सुन्दर बेवजह नष्ट हो रहा है,
धमाकों और विस्फोटों के साथ[1]

इसलिए कवि कहना चाहते है कि साहस, बलिदान, प्रतिरोध सब पवित्र शब्द हैं। युद्ध कतई पवित्र नहीं। क्योंकि सारी तबाही बरबादी के बाद सुन्दर और पवित्र कुछ नष्ट हो जाता है। मानवेतिहास के उस मोड़ पर काले धागे से भरकर कहीं न कहीं मृत्यु के साथ कुछ नष्ट हो जाता है।

मानवीय संबंधों की आत्मीयता कवि को हमेशा प्रेरणा प्रदान करती रहती है। उसमें पूर्वजों की स्मृतियाँ भी हैं। पूर्वजों पर, माँ बाप की मृत्यु के बाद लिखी गयी कविताओं में एक तरह की आवाजाही अतीत वर्तमान और भविष्य में चलती रहती है - पूर्वजों और पूर्व जीवन की स्मृति यहाँ केवल कविता की विषय वस्तु नहीं है बल्कि उससे बढ़कर धीरे-धीरे सार्वभौमिक घर का पर्याय बन जाती है।[2] कवि यह ध्वनित करते हैं कि वर्तमान की उपस्थिति का कारण अतीत है। वे लोग थे उसी कारण से हम है। हम वर्तमान में एक शब्द उठाते हैं तो वह गूँजता है प्राचीन गलियारों में कहीं। क्योंकि शब्द का भी एक परंपरा है। असंख्य मुँह से होकर अब शब्द हमारे पास है। शब्द के इस इतिहास की याद के बिना आज शब्द का उपयोग

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 41, प्र. सं. 2000
2. कविता और समय - अरुण कमल, पृ. 141 प्र. स. 1999

नामुमकिन है। घर, उसी प्रकार है। कुछ क्षण के बाद वर्तमान अतीत बन जाता है। हम भी पूर्वजों की कोटी में आ जाएँगे। हम 'पूर्वजों की अस्थियों में रहते हैं -

हम उठाते हैं टोकनियों पर
बोझ और समय
हम रूखी सूखी खा और ठंडा पानी पीकर
चल पड़ते हैं
अनंत की राह पर
और धीरे धीरे दृश्य में
ओझल हो जाते हैं
कि कोई देखे तो कह नहीं पाएगा
कि अभी कुछ देर पहले
हम थे।[1]

इसतरह 'पिता के जूते', 'मौत की ट्रेन दिदिया', 'घर में मृत्यु', 'दिवंगत बहन आदि सभी में आत्मीय संबंध की ऊष्मलता की नमी का अनुभव किया जा सकता है। 'धुँधली तसवीर' जैसी कविताएँ गहन एवं सूक्ष्म अध्ययन की माँग करती है। पूर्वजों की छवि किस तरह हममें छा जाती है और हमें आलोकित करते हुए उसका हम पर पुनः जीना इस कविता से प्रकट है। कवि की माँ की एक तसवीर बैठकखाने में रखी

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका- भाग-1) अशोक वाजपेयी, , पृ. 234, प्र. सं. 1986

थी जो धूँधली पड़ी है। तस्वीर की धूँधली पड़ने के बाद बीस-तीस साल के बाद बेटे में यह विचार उमडता है कि मुझमें ऐसा बचा ही क्या है जो उनका बेटा कहाऊँ।

उसकी तसवीर धुंधली होती जाती है रैक पर
पर क्या मेरी शिराओं के बहते रक्त में,
मेरे विलंबित सपनों में
किसी का बुरा सोचने की मेरी झिझक में
वही मातृछवि नहीं दमकती?
*  *  *  *
धूँधली होती है तसवीर
एक ज़िद, एक आदत की तरह कड़ियल
माँ है
तसवीर से बाहर,
तसवीर से परे
बची हुई मुझमें।[1]

जिन-जिन व्यक्तियों आकृतियों एवं चरित्रों से उनका आत्मीय संबंध था उसकी किसी न किसी छवियाँ उनके मर जाने के बाद भी हममें बची रहती है। एक तरफ से यह हमें स्फूर्ती प्रदान करती है तो दूसरी तरफ वे हमारे द्वारा उनके इस दुनिया में रहने पर भी बचा रहता है।

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 50, प्र. सं. 2000

## कला की कभी न बुझने वाली दीपशिखाएँ

अशोक वाजपेयी में बचपन से लेकर पास पडोस का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। घर एवं पडोस के प्रभाव का भूगोल भी इसके समान्तर व्यापक हो गया है। अर्थात् इस कवि-व्यक्तित्व के पल्लवन काल में ही यह एहसास सक्रिय रहा है कि सचाई शब्दों के अलावा सुरों या रेखाओं या मुद्राओं में भी उतना ही रसती-बसती है। तबसे लेकर कवि बराबर यह मानता रहा है कि कविता की संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति आदि से एक अटूट बिरादरी है और वे सब अशोक वाजपेयी की कविता का अनिवार्य पडोस है। अशोक वाजपेयी जैसे सजग चौकन्ने संस्कृतिकर्मी के सक्रिय जीवन के बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित प्रथम संकलन से लेकर इसका स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। मकबूल फिदा हुसैन के चित्र, अली अकबर खाँ के सरोदवादन, खजुराहो के शिल्प, और शमशेर बहादूर सिंह के पहले कविता संग्रह पर कविताएँ लिखी गयी थीं। ये कविताएँ चित्र, संगीत, मूर्ति और साहित्य जैसी ललित कलाओं का कवितानुभव ही हैं। 'हुसैन के एक चित्र की अचानक याद' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं -

पेड़ों की अंधेरी कतारों के शिखरों पर हँसता है कोई
घिर जाता है आकाश-काला / घर मेरा उभरता है, डूबता है
अंधेरे में, सड़क पर,

गहन लाल आँखों से छूटकर
एक मद्धिम पीली रोशनी में लगातार....[1]

व्यस्तता के बीच ऐसे चित्र यदि अचानक याद आते हैं तो यह पहले कभी उसके भीतर गहरे में पैठने के कारण है। चित्र की रेखाएँ और रेखाएँ विन्यस्त करनेवाली जीवन छवियों ने कवि मन पर इतना प्रभाव उत्पन्न किया है कि वह दूसरी कला के जन्म की प्रेरणा बन गयी। चित्रकला की कविता को पकड़नेवाला कवि मन का संगीतिक सा अनुभव है यह।

सृजनात्मक जीवन के प्रारंभिक दौर में सागर शहर के एक तरुण कवि के लिए ये सभी कलाकृतियाँ, उसके प्रेम या जीवन की तरह ठोस सचाई थीं। उसकी कविता तब से आज तक बार-बार इस सचाई को सेलिब्रेट करती और उसे प्रणति देने की चेष्टा करती रही है। कवि के अनुसार 'कलाओं' को सचाई का हिस्सा मानने का पूर्वग्रह हमेशा ही जीवनदायी और सृजनक्षम रहा है। वे हमारी जिजीविषा का स्थायी स्थापत्य रही है। कई बार तो हमें अपना होना और एक विराट विपुल निरंतरता में अवस्थित होना उन्हीं के माध्यम से याद आता है। नश्वरता के पड़ोस में वे अनश्वरता का जगमगाता हुआ घर है वे ऐसी निष्कम्प दीपशिखाएँ है जो सारा मोम चुक जाने के बाद भी जलती रहती है।"[2] 2002 में कलाओं और कलाकारों

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका-तिनका भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 77, प्र. सं : 1966
2. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी - पृ. 17. प्र. सं. 2001

पर केन्द्रित उनकी कविताओं का एक संग्रह निकला था, जिसका नाम है 'उजाला एक मंदिर बनाता है।' शीर्षक के समान ही कवि हमेशा कला के आलोक से अपने कविता संसार ज्योतित रहने के लिए जतन किया भी है। इसकी भूमिका में कवि का वक्तव्य ध्यातव्य है - शुरु से ही मुझे लगता रहा है कि कलाओं में जो जीवन प्रगट-विन्यस्त होता है उतना ही सार्थक, स्पन्दित और समृद्धकारी है जितना जीवन। बल्कि कलाओं में जीवन अधिक संपुजित और सघन होता है। मुझे यह भी लगता है कि मनुष्य ने जो अनंत अपने लिए गढा है उसका बढा हिस्सा कलाओं का है। इसलिए मुझे अपनी कविता का एक काम इस रचे हुए जीवन और गढे हुए अनंत को सहेजने का लगता रहा है।[1]

बरसों पहले मराठी रंगकर्मी देशपांडे ने अशोक वाजपेयी को भारतीय कला जगत् का एक घरेलू नाम कहा था। यह तो सचाई का सार्वजनिक स्वीकार भर था कि वे भारतीय भाषाओं में भी अकेले कवि हैं जिनका संगीत, नृत्य, रूपंकर कलाओं, लोककलाओं, रंगमंच के कलाकारों और विशेषज्ञों से गहरा और निजी सम्पर्क और संबध रहा है। अशोक वाजपेयी की कविताओं के केन्द्रीय सरोकारों में मुख्य हैं कला की सचाई की पहचान। संगीतकार कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन मंसूर, उस्ताद अली अक्बर खाँ, चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन, सैयद हैदर रज़ा, जगदीश

---

1. उजाला एक मन्दिर बनाता है - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. सं. 2002

स्वामिनाथन आदि की कलात्मकता को कवितानुभव बनाने में अशोक वाजपेयी का कवि व्यक्तित्व हमेशा जागरूक रहता है। इन के अलावा नृत्य, खजुराहो, कोणार्क, अजन्ता आदि के कला वैभव पर भी कविताएँ हैं। ये कविताएँ दरअसल भारतीय शास्त्रीय कलाओं का काव्यात्मक रचाव हैं। अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित ग्रन्थ जैसे कला विनोद, समये से बाहर आत्मा का ताप और पत्रिका जैसी - पूर्वग्रह, बहुवचन, समास आदि में भी कला के प्रति उनकी उन्मुखता स्पष्ट है।

कला और कलाकारों पर लिखी गयी समूची कविताओं को एकत्रित करना कलाओं से उनके संबंध की निजी यात्रा का वृत्तांत तैयार करना ही है। कविता और कला के बीच का संबंध कलाकार और कवि के बीच के सघन एवं भावुक तादात्म्य स्थापन का परिणाम है। कवि अनुभव करते हैं कि संगीत का हमारी संस्कृति के साथ गहरा संबंध है। संगीत की लहरें, आरोहण, अवरोहण, राग हमारे भीतर आध्यात्मिकता का भाव जगाते हैं। संगीतकार मूलतः साधक है। वे संगीत के द्वारा उस विराट रहस्य का अन्वेषण करते हैं और अपनी साधना में वह कभी-कभी अनंत को छूता भी है। श्रोता इसे सुनकर अतीन्द्रीय आनन्द की अवस्था में पहूँच जाते हैं। मल्लिकार्जुन मंसूर का गाना और उसकी स्मृति में कवि कहते हैं -

वे बूढे ईश्वर की तरह सयाने-पवित्र
एक बच्चे की फुरती से

आते हैं -
उँगली पकड
हमें अनश्वरता के पड़ोस में ले जाते हैं।[1]

संगीत में ऐसी अनिर्वचनीय शक्ति है जिससे सुननेवाले तादात्म्य स्थापित करते हैं। संगीत की अजस्र धारा के प्रवाह में मानव के कलंक सब दूर हो जाता है और पवित्र एवं शांत होकर ईश्वर का एहसास अपने भीतर अनुभव करने लगता है। संगीत का महत्व एवं उसकी अनिवार्यता आजकल बढ़ रही है। क्योंकि समकालीन सन्दर्भ में आकर आधुनिक मानव संघर्ष में है। जो-जो कलाएँ मनुष्य में मानवीयता भर देती हैं आज वे कलाएँ मनुष्य से बहुत दूर हैं। उनका ही कथन है - "आखिर कला क्या है? जो जीवन के किसी अंग, अंश या पक्ष को कला में रूपांतरित करना है। जीवन सच्चा और विश्वसनीय है। जीवन अगर कला को प्रेरित करता है तो कला भी सच्ची और विश्वसनीय है। कला भी जीवन को परिष्कार देती है। विकल्प जीवन और कला के बीच नहीं है। भरपूर आदमी बना रहना है तो दोनों की ज़रूरत है।"[2]

वे एक जलप्रपात की तरह
गिरते रहते है
स्वरों की हरियाली
और राग की चाँदनी में
अजस्र[3]

---

1. अभी कुछ और (तिनका तिनका भाग-2) अशोक वाजपेयी, पृ. 343, प्र. सं. 1998
2. मेरे साक्षात्कार - अशोक वाजपेयी - पृ. 47, प्र. सं. 1998
3. अभी कुछ और (तिनका-तिनका भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 343, प्र. सं. 1998

स्वरों का हृदय में उतरने का अनुभव इधर तीव्र है। कविता और कला के साथ इतना, गहरा संबंध जोड़ने के बावजूद बहुत कुछ करने को बाकी रह गया है। एहसास कवि में प्रखर है क्योंकि कवि केलिए कविता कर्म आध्यात्मिक पुनर्वास है। उसके लिए अथक प्रयास करना है। रहस्य का उद्‌घाटन तक यह खोज जारी करना ही है।

समय के यथार्थ की पहचान कवि को सता रही है। यथार्थ की विडम्बनात्मक स्थिति में कवि का कलाओं के आश्रय में जाना स्वाभाविक है। क्योंकि कलाएँ ही वह निष्कम्प दीपशिखाएँ हैं जो सारे मोम बुझ जाने पर भी प्रकाशित रहती हैं।

उलझनों-भरे घावों खरोंचों से लथ पथ
टुच्चे होते जाते समय से
आगे/उनके पीछे आता है
गिड़गिड़ाता हुआ समय
दरिद्र और अपंग
भीख माँगता हाथ फैलाए समय-
हाँफता हुआ[1]

कला समय को सहेजती है, मनुष्य को संभालती है क्योंकि समय इतना विडंबनात्मक है, जिससे कोई भी व्यक्ति मुक्त नहीं। अशोक वाजपेयी की कविता के मूल में उनका अपना दर्शन है। ईश्वर के अनुपस्थित होने का कारण कवि में संघर्ष का अनुभव

---

1. अभी कुछ और (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 344, प्र. सं. 1998

होता है। इस संघर्ष से लगभग मुक्ति कलाओं के द्वारा संभव है। कवि संगीत की लहरों के इधर उधर तैरकर अंत में अनंत के पड़ोस में पहूँच जाते हैं।

वे गाते हैं
जो कुछ बहुत प्राचीन हममें जागता है
गूँजता है ऐसे जैसे कि
सब कुछ सुरों से ही उपजता है
सुरों में ही निमजता है
सुरों में ही निवसता और मरता है।[1]

इस तरह मल्लिकार्जुन पर लिखी कविता दार्शनिक आशयों से परिपूर्ण है। उनकी संगीत साधना और व्यक्तित्व की विशिष्टता को जिस ढंग से अशोक वाजपेयी ने उद्‌घाटित किया है वह पवित्रता और उदात्तता का भाव जाग्रत करती है।[2]

जो नहीं है
उसके की नाम है
लोप अनुपस्थिति अन्त समापन मृत्यु अवसान
पर सभी के होने को याद करते हुए
कोइ भी नहीं जो उसके न होने को व्यक्त करे।
न होना भाषा या कविता में संभव ही नहीं है।
समय से बाहर कदम रखना भाषा से भी बाहर जाना है।[3]

---

1. अभी कुछ और (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 346, प्र. सं. 1998
2. समीक्षा - कविता हद नहीं बाँधती - कृष्णचन्द्र लाल - जुलाई-सितम्बर, पृ. 8, प्र. सं. 1996
3. बहुरि अकेला - अशोक वाजपेयी - पृ. 166, प्र. सं. 1992

संगीतकार कुमार गंधर्व से अशोक वाजपेयी का संबंध जितना गहरा है उसे स्पष्ट करती है 'बहुरि अकेला' संग्रह की कविताएँ। उनके निधन ने जीनेवाले को कितना अकेला बना दिया है और उनकी स्मृतियाँ कैसे इस अकेलेपन को संगीतिक सा बनाता है ये सब इस संग्रह की कविता में मुखर है। यह एक कलाकार का अंतरंग दर्शन है और इस अंतरंग के संगठन और विकास में कभी-कभार काम में आनेवाले व्यक्तित्व की अनुगूंजें हैं। कुमार गन्धर्व और उनके संगीत की अद्वितीयता को रेखांकित करने के साथ ही इन निबंधों में साहित्य मुख्यतः कविता बोध को जगाते रखने और उसे बढ़ाते चलने की शक्ति भी है। परम्परा, समकालीनता, आधुनिकता, सृजनात्मकता, शास्त्रीयता कलात्मक सक्रियता, अभिव्यक्ति की शैलियाँ, प्रयोगशीलता, आदि कुछ ऐसे मुद्दे हैं जो कलाओं की विधागत सीमाओं के आर-पार सभी से जुड़े हैं। कुमार गन्धर्व अपनी संगीत-साधना में रूढ़ता को नहीं बल्कि परम्परा के पुनराविष्कार को, समकालीन दबावों में अत्यन्त परिवर्तित, कसरत करनेवाली व्यावसायिकता से संगीत की मुक्ति के पथ को चुना है।[1]

अकेलापन, आधुनिकता की एक बडी चारित्रिक विशेषता रहा है। पर यहाँ उनके संगीत का अकेलापन कुमार गंधर्व द्वारा सृजित अकेलापन है। संगीत का जो

---

1. मधुमती - बहुरी अकेला - कुमार गन्धर्व पर कविताएँ और निबंध - पृ. 68, जुलाई, 2001

नया सौन्दर्यशास्त्र कुमारजी ने विकसित किया है, उसमें मौन का अत्यन्त संवेदनशील और अर्थगर्भ उपयोग है।

> सबकुछ को भर नहीं देना चाहिए। कुछ खाली
> छोड़ देना चाहिए। वे एकाएक कई बार अप्रत्याशित
> ढंग से रुक जाते है : वे सुरों के सिलसिले में
> कुछ जगह खाली छोड़ देते है - जगह भले खाली हो
> पर वे होते है। खाली जगह में अनुपस्थिति खिलती है।[1]

अपनी पूरी विकलता और उत्कृष्टता के बावजूद उनके यहाँ आदमी का अकेलापन निरी संबंधहीनता का पर्याय नहीं बनता उसमें आध्यात्मिक भराव भी है। इसी अकेलेपन में मनुष्य, ईश्वर की अनुपस्थिति और अनुपस्थिति के कारण को पहचानते है। इसलिए यह अकेलेपन, उच्च एवं उत्कृष्ट है। वांछनीय भी। निजी अस्तित्व का बोध, आध्यात्मिकता का बोध दोनों इसी अकेलेपन में ही अनुभव कर सकते है।

'नर्तकी' का नृत्य भी कवि मन में असंख्य दृश्य उपस्थित करते है। जिसप्रकार फूलों से लथ पथ डाल नदी की ओर झुककर पानी से कुछ बताती है और हवा के झोंके में डोलकर वापस स्थिर हो जाती है उसीप्रकार नर्तकी का नृत्य है। उसके पैरों से पायल की ध्वनि आकाश के तारे का गीत है, वह अपने जीवन के एकांत को शरीर की लय से, लालित्य से भरती है -

---

1. उजाला एक मंदिर बनाता है - अशोक वाजपेयी - पृ. 21, प्र.स. 2002

चौंधियाते प्रकाश में
अनगिनत आँखों के घेरे में
सबके बीचों बीच
वह अकेली नाचती है
अकेलेपन से खोजती है
अपने लिए जगह[1]

अकेली होकर नाचते समय अपने लिए स्वतंत्र जगह की बुनावट करनेवाली स्त्री कवि मन की उम्मीद है। इधर स्त्री-जीवन की अनंत संभावनाओं की गहरी पहचान है। जहाँ स्त्री-पुरुष संबंध की ऊष्मलता एवं पवित्रता का खुलापन है वहाँ यह कविता भी उनके स्त्री संबंधी स्वतंत्र विचार को प्रकट करती है।

संगीत और नृत्य के समान चित्र तथा मूर्ति भी कवि को कविता करने के लिए प्रेरित कर रहे है। चित्र एवं मूर्ती में सौन्दर्यसंबंधी परंपरागत अवधारणा एवं संस्कृति की पहचान उपलब्ध होती है। 'खजुराहो जाने से पहले' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है -

मैं कौन-सी आवाज़ें ढूढूँगा
पत्थर की उन आकृतियों में
जो चुप रहेंगी कविताओं की तरह?
आवाज़ों की इस बहुत बड़ी दुनिया में
पत्थर-भर है जो चुप हैं

---

1. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 340, प्र. सं. 1989

और मरे हैं या जीवित हैं,
में जो आवाज़ों को प्यार करता हूँ
उनसे घिरा हूँ
उनसे अपना छोटा संगीत बुनता हूँ।[1]

खजुराहो की मूर्तियों में जीवन्तता की खोज करने की अदम्य इच्छा इधर प्रकट है। उन मूर्तियों में जो कविता है, कविता की चुप्पी है, बहुत गहन एवं गूढ है। आवाज़ों को प्यार करनेवाले कवि के लिए वह मौन, आवाज़ों की बहुत बड़ी दुनिया का आभास देना स्वाभाविक है। अति प्राचीन एवं पुरानी हवा और संस्कृति को आत्मसात् करने का भाव उनमें प्रबल है।

कोणार्क और अजन्ता के चित्र और वास्तुकला का प्रभाव भी उनमें तीव्र है। चिर-पुरातन से यह संबंध कवि को मानव बनाता है, संवेदनशील बनाता है। परंपरा एवं प्राचीन संस्कृति की संवेदनात्मक ऊर्जा कवि की आत्मिक शक्ति को बढावा देती है।

चट्टान का एक चित्रित आकाश है
निश्शब्द।
उसकी दिगन्तहीन करुणा के आगे
नृत्यलीन पत्थर

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 80, प्र. सं. 1966

किस पद्मस्पर्श की प्रतीक्षा में खडे है?
दूर कहीं/पत्थर के हृदय में
गूँजता है
शताब्दियों से अनहद
एक पुरातन राग।[1]

चिर पुरातन की सुगन्ध एवं संगीत इधर कवि की प्रेरकशक्तियाँ हैं। पुरातन और प्राचीनता का बोध नहीं करता रहा है। पुरातन वर्तमान का नैरन्तर्य बनकर अशोक वाजपेयी में उतरता है। अशोक वाजपेयी के कवि व्यक्तित्व की बुनावट कलाओं की अन्दरुनी संगीत से हुई है। चित्रकार सैयद हैदर रज़ा पर लिखी लंबी कविता की अंतिम पंक्तियाँ ज़रूर शब्दों के दुहराने से बचाती हैं। वे बहुत कुछ संप्रेषित करती भी हैं।

आत्मा के ताप में
राख होकर भी बची रहती है इच्छाएँ-
चित्रों में खर्च होने के बाद भी बचे रहते है शब्द
प्रार्थना में लुप्त होने के बाद भी
बची रहती है हृदय की पुकार
हम उस बचे हुए से
जो समय के पार बचा रहेगा
काल के प्रतिघात के बावजूद,

---

1. उजाला एक मंदिर बनाता है - अशोक वाजपेयी, पृ. 73, प्र. सं. 2002

उसका अभिषेक करते हैं-
समय से घायल हाथों से हम
जो कालातीत है
उसका अभिषेक करते है[1]

## ऐन्द्रियता से आध्यात्मिकता का स्पर्श

अशोक वाजपेयी की कविता में जीवन की बहुस्वरता का अनुभव स्पष्ट दृष्टिगत होता है। आजकल 'ऐन्द्रियता' शब्द को गलत अर्थ में हाशिये में ढकेल दिया गया है। लेकिन कविता की एक समस्या हर स्थिति के, अपने अनुभव के, हर घटना के, एकदम विशिष्ट और अद्वितीय ब्योरों और रेशों के विशिष्ट भूगोल को पकड़ने की है। कविता की बुनियादी ऐन्द्रियता इसी से पैदा होती है। अपने आस पडोस को, प्रकृति को, संबंधों को, संसार को, ईश्वर को, प्रेम को व्यक्ति किस प्रकार अनुभव करते है यह एक बहुत बडा सवाल है। दूसरी समस्या अनुभव किये हुए ब्योरों और रेशों के भीतर से कुछ तात्विक पाने की है। इस ऐन्द्रियता और तात्विकता में से एक के बिना दूसरा अधूरा रहेगा। यह प्रयत्न हर कविता में होता है। कुछ में वह साफ नज़र आता है, कुछ में ओझल हो जाता है। कविता की प्रेरणा के मूल में आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, अगल-बगल, आने-जाने की, प्रत्याशा करने की, हाथ बढाने की, छूने की, देखने की स्थितियाँ है। यही ऐन्द्रियता से तात्पर्य है।

---

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी, पृ. 144, प्र. सं. 2002

अशोक वाजपेयी की कविता मानवीय संबंधों के अनेक स्तर हमारे सामने लाती है। सभी की मूल संवेदना प्रेम ही है। कलाकारों, घरवालों पर लिखित कविताओं के अलावा कुछ कविताएँ ऐसी भी हैं, जिनमें प्रेम की पवित्रता और उसकी आध्यात्मिकता की खोज व्याप्त है क्योंकि प्रेम एक शक्ति है, उम्मीद है, एक प्रार्थना है। एक वरदान है। जिस किसी व्यक्ति के मन में यह भाव है वह जीवन को सार्थक सिद्ध करेगा। एक सृजनशील कवि के लिए विश्व की सभी वस्तुओं का अनुभव गहरा है। प्रकृति है तो उसके हर चकित करनेवाले दृश्य से वह प्रेम करने लगता है। इसप्रकार दोनों के बीच का जो रिश्ता है वह प्रेम का रिश्ता है। इसे ही कवि 'प्रेम के रूपक' कविता में दर्ज कर रहे है। हरियाली पर ओस का प्रथम बूँद, नीलिमा से एकाकार होता अंतिम पक्षी, ज्वलन्त सूर्य की लालिमा ये सब कवि में किर किरी सा पैदा करता है। जो प्रेम के कारण है। इन्द्रियों से अनुभव करने का परिणाम है। नीरव अंधेरे में भी ध्यानमग्न जड़ों की तरह शब्द, अंधेरे को चीर कर बिजली के  कौंधने के समान कवि को लग रहा है। इसप्रकार शब्द, दस्तक, कीड़ों की न सुनी जा सकनेवाली प्रार्थना ये सब इसीलिए कवि के लिए प्रेम के रूपक है।

मैं प्रस्तावित करता हूँ
अंधेरे में जड़ों की तरह सक्रिय शब्द,
बड़ी सुबह
दरवाज़े पर दस्तक का सन्देह।

कीड़ों की/न सुनी जा सकनेवाली प्रार्थना
मैं प्रस्तावित करता हूँ।[1]

आज की कविता ऐन्द्रियता से बहुत दूर है। अशोक वाजपेयी का ही कथन है - एकतरह के अखबारीपन ने हमारी भाषा को यों ग्रस लिया है कि उसमें पठनीयता और प्रसाद गुण तो आ गए है, पर संबंधों और वस्तुओं की ऐन्द्रियता धीरे-धीरे गायब होती जा रही है।[2] 'धरती', 'आकाश', 'सूर्य', 'चन्द्र', 'तारे', 'ब्रह्माण्ड' जैसे स्वाभाविक प्राकृतिक उपादानों को समय-समय पर अपने अनुसार अनुभव कर आनन्द प्राप्ति का उपाय आधुनिक मानव भूल गया है। निरन्तर दम घुटनेवाले परिवेश में उलझकर जीवन की स्वाभाविकता से अपरिचित सा हो गये हैं। जीवन को एक उत्सव के रूप में मनाने और उसके लिए स्वयं को स्वतंत्र करने का विद्रोही एवं चुनौतीपूर्ण आग्रह आज के लोगों में नहीं है। ऐसी स्थिति में अशोक वाजपेयी ने अपनी कविता में प्रेम के ऐन्द्रिक पक्ष को उसकी परिपूर्णता में अभिव्यंजित करने की अदम्य लालसा दिखायी है।

जैसे वृक्ष के पास
पत्तियाँ, छाल, तना, जडें है
वैसे ही उसके पास है
उसकी अपनी धूप, अपनी आभा
सूर्य उसे प्रकट भर कर देता है।[3]

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 234, प्र. सं. 1986
2. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी - पृ. 31, प्र. सं. 1997
3. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 247, प्र. सं. 1986

अपनी प्रेमिका के अनुपम सौन्दर्य कवि में पवित्र प्रेम की लहरें उठाती है। इतनी गहराई और तल्लीनता से वह उसका सामीप्य चाहता है कि दोनों का अस्तित्व मिटकर एक हो जाता है। इन्द्रियों के तदाकार होने से अतीन्द्रिय का जो स्पर्श संभव है और उसमें जो पवित्रता है उसी उम्मीद को फैलाना कवि का मकसद है। स्त्री-पुरुष के बीच का संबंध मात्र शारीरिक या बाह्य नहीं वह कुछ आत्मिक और आन्तरिक है। दोनें के बीच के संबंध का यह उन्नत स्तर तक पहूँचने की संभावनाएँ मानव में ज़रूर है। लेकिन आधुनिक मानव क्षुद्र संघर्षों में पड़कर प्रेम के पवित्र संबंधों को अपवित्र कर रहे हैं। अपने में मौजूद अनंत संभावनाओं से बेखबर रह जाना जीवन को व्यर्थ करने के समान है। प्रेम की इस तदाकार की स्थिति तक न पहूँच पाना मानव का पराजय है। अनंत को छूने में वे असफल भी हो जाएँगे। 'आओ' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है -

आओ/मुझे पहनो
जैसे वृक्ष पहनता है
छाल को/जैसे पगडण्डी पहनती है
हरी घास को।
*  *  *
मुझे लो
जैसे अँधेरा लेता है जड़ों को
जैसे पानी लेता है चन्द्रमा को
जैसे अनन्त लेता है समय को[1]

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 143, प्र. सं. 1984

'जब हम प्यार करते है', 'प्यार करते हुए सूर्य स्मरण', 'वसन्त की तरह', 'भिलाई में' आदि प्रेम का इज़हार करनेवाली कविताएँ हैं। प्रेम के ऐन्द्रिक अनुभव को खुलकर बताने का प्रयास है। समकालीन दौर में आकर धर्म की राजनीति ने संबंधों के खुलेपन एवं प्रेम के पवित्र ऐन्द्रिय अनुभव को अत्यन्त विरूप कर दिया है। वहाँ ये कविताएँ विद्रोही तेवर अपनाती हैं। स्त्री पुरुष संबंध का जो प्राकृतिक विधान है वह आधुनिक युग में आकर विकृत किया गया हैं। प्राकृतिक और स्वाभाविकता में जो सौन्दर्य और पवित्रता है वह कहीं गायब हो गये है। मानव मन में इस के प्रति घृणा एवं दूरी का भाव पैदा करने में अन्य संसाधनों के साथ धार्मिक संस्थानों का बहुत बडा हाथ है। यह मानव की स्वतंत्रता पर डाली गयी बेड़ियाँ भी हैं जो उन्हें पूर्णतः उन्मुक्त एवं आज़ाद होने नहीं देती हैं। स्त्री हो या पुरुष स्वतंत्रता के तमाम स्तरों की प्राप्ति के बिना मनुष्य की स्वाधीनता पूर्ण नहीं होती है। इस प्रकार मनुष्य अपने भोले-भाले, स्वभाविक, नैतिक, प्रेम से विच्छिन्न रहन के कारण समभाव की भावना से दूर हो जाता है। दुनिया की समस्याओं का मूल कारण प्रेम का अभाव ही है। इसे कई विभूतियों ने अपने-अपने ढंग से लिख डाला भी है। 'भिलाई में 'शीर्षक कविता में समय के सामान्य दृश्य से अपने को अलग रखनेवाले कवि सामने आते हैं। कवि उस चिरपुरातन प्रेम की संस्कृति की ओर वापस जा रहे हैं। वहीं हर तरह के शोर शराबे के बीच में भी प्रेम के लिए थोड़ी जगह बाकी है....

फिर एक रात जब
इस्पात की तरह भारी होने लगेगा
तेरा वक्त और तेरा हृदय और तेरा प्यार
तब मैं
लोगों और कोयले को ले जाती रेलगाडियों के नीचे से

और सोये हुए नगरों पर पहरा देती बात्तियों के पीछे से
तुझे आवाज़ दूँगा....
काले भारी भय की तरह स्तब्ध होगी पृथ्वी
और मृत्यु की तरह निःस्पन्द छाया हुआ होगा आकाश
मेरे असंख्य अंश तेरी प्रतीक्षा करेंगे
यंत्रद्वारों के पास....।[1]

उनके ही दूसरे शब्दों में कहे तो - "मैं जीवनासक्ति और जिजीविषा का कवि हूँ। देह और प्रेम के नहीं। यह एक ऐसा समय है जिसमें जीवन को संकुचित करने, उसे रोकने-प्रभावित करने के सारे दैत्याकार उपकरण हम ने विकसित किये हैं। ऐसे में जीने की जो इच्छा है, मैं उसका कवि हूँ। अगर 'रति' प्रेम का रूपक है तो रति इस आसक्ति का भी रूपक है।[2] कवि का यह अदम्य आग्रह, 'प्रेम के लिए जगह', 'प्रणय निवेदन', 'खोया हुआ प्यार', 'तुम आ रहे हो' आदि कविताओं में भी दृष्टिगत होता है।

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 66, प्र. सं. 1966
2. मेरे साक्षात्कार - अशोक वाजपेयी - पृ. 123, प्र. सं. 1998

प्रेम अपने आप में एक परम नैतिक कर्म है। कवि हर कहीं प्रजातांत्रिक समकक्षता के आग्रही है। किसी भी अवधारणा के पक्षधर नहीं। इसलिए कवि प्रेम की कामना करते हैं। समकक्षता और मुक्ति ऐसे दो नैतिक कर्म हैं जिस पर कवि विश्वास करते है तथा जिनके बिना प्रेम संभव नहीं। विराग के बिना भी प्रेम संभव नहीं। कवि के लिए समस्त जीवन तो उत्सव है। वह देह और आत्मा के द्वैत को भी अस्वीकार करता है।

डॉ. नन्दकिशोर आचार्य के अनुसार - 'उनकी ऐसी कविताएँ उत्सवधर्मा, दरअसल अशोक वाजपेयी की वैष्णव संवेदना की, जीवन के प्रति लीला भाव की ही व्यंजना है। प्रेम और रति राग अशोक के काव्य लोक में रंग भर रहे है तो इसलिए कि देह के प्रति प्रेम के बिना जीवन के प्रति प्रेम केवल एक अवधारणा बनकर रह जाता है। सच तो यह है कि जीवन की पवित्रता का भाव ही ऐन्द्रियता की पवित्रता में रूपान्तरित होता है और उसी के कारण एक सहज जैविक क्रिया, जीवन को सार्थक बनानेवाली सर्जनात्मक अनुभूती में बदल जाती है। इसलिए देह अशोक के यहाँ एक पावन सौन्दर्य है और प्रेम इस सुन्दरता में किये जाने वाला पवित्र स्नान।[1]

---

1. मेरे साक्षात्कार - वैष्णव संवेदना की अधुनिकता - डॉ. नन्दकिशोर आचार्य - पृ. 120, जनवरी-मार्च 1995

एक सुनसान दोपहर
एक जनाकीर्ण शाम के छोर पर एकान्त
लदी-फंदी बस की तीसरी सीट
उसने प्रेम के लिए जगह बनायी[1]

यह कोई उत्सवधर्मी वापसी नहीं है। यह एक आधुनिक कवि का उस दुनिया में पुनर्जन्म है जहाँ घाव, धूल, और थकन है, पर यहीं पर उसे प्रेम के लिए जगह बनानी है। इसलिए कवि निरन्तर प्रयत्नशील है

समय और शब्द अब भी बचे है
प्रेम के पास
उसे पता है कि
आयु के कुम्हलाते पुष्प में
शेष है अभी भी पराग[2]

जिजीविषा और उम्मीद का कोई अन्त नहीं निरंतर भाषा में इसकी माँग और इसकी शक्ति बढ़ती रही है। वृक्ष और उसमें उगनेवाले फूलों और पत्तियों के बीच जो संबंध है वही संबंध व्यक्ति की आत्मा और शरीर के बीच है। पत्तियों, फूलों का तब तक अस्तित्व है जब तक वे वृक्ष के अंग है। उसीप्रकार -

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 258, प्र. सं. 1986
2. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी - पृ. 116, प्र. सं. 2002

जब तक तुम साधे हो उसके शरीर को
उसके आत्मा भी तुमसे अटूट है
आत्मा शरीर का अनन्त स्वप्न देखती है।[1]

इधर इस कविता आत्मा और शरीर के प्रेम संबंध का दूसरा स्तर विन्यस्त करती है।

**प्रेम का नया व्योम**

समकालीन दौर में आकर समाज में प्रेम की माँग बदल गयी है। अशोक वाजपेयी की कविताएँ मानवीय संबंधों के बहुआयामी पक्षों को हमारे सामने खोलती हैं। प्रेम ही वह एकमात्र तत्व है जो हमें इस दुनिया के सभी चीज़ों से जोड़ता है। दुनिया की तमाम वस्तुओं की प्रासंगिकता एवं सार्थकता प्रेम से ही अनुभव कर पाते है।

शब्द छू पाते है अर्थ
धूप बिछती है सीढियों पर
चिडिया उड़ जाती है नीलिमा में
गान लेकर
क्योंकि तुम हो[2]

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 142, प्र. सं. 1984
2. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 256, प्र. सं. 1986

प्यार, विनय एवं सहानुभूति के साथ इस दुनिया को निहारते वक्त इसका पूरा चित्र हमारी समझ में आने लगता है। प्यार है तो वहाँ भरापन है। प्यार के साथ देखने पर हर कहीं सौन्दर्य ही सामने दीख पड़ता है। थोड़ी सी जगह कवि स्वयं को चाहता है-

तुम हरी घास हो
में उठती हुई ओस
मुझे एक ज़रा सी नोक दे दो
जहाँ विलीन होने के पहले
ठहर सकूँ[1]

अपनेपन के साथ, आत्मीयता के साथ, अन्तरंगता के साथ ज़रा बैठने के लिए एक शांत चौगान की तलाश करनेवाले कवि इतनी उम्मीद तो रखता है। लेकिन अपने समय में ऐसी जगह उपलब्ध नहीं है। उन्हें इसकी पहचान भी हैं। अपने ग्यारह काव्य संग्रहों की अधिकतम कविताओं के मूल में निहित तत्व प्रेम ही है। प्रेम का संभावनाजन्य उन्मुक्त थल उनके यहाँ सुरक्षित है। आखिर कवि कविता को बचाने की इच्छा रखनेवाले हैं। यह चिंता अशोक वाजपेयी के मन में बराबर बनी रहती है क्योंकि वे मानते हैं कि कविता के बचे रहने का अर्थ है मनुष्य का बचा रहना। उसके लिए कविता के पक्ष में खडे होने का मतलब है मनुष्य के पक्ष में खडा होना। मनुष्य अशोक वाजपेयी की कविता के केन्द्र में है। मनुष्य को मनुष्य बनानेवाले तत्वों को पुनःस्थापित करने में उनका सरोकार है।

.....📖.....

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 240, प्र. सं. 1986

# अध्याय - 3

## अशोक वाजपेयी की कविता में सामाजिक संसक्ति

## कविता और सामाजिक संसक्ति

कविता बहुत सारे तत्वों से मिलकर बनती है। उन तत्वों को अलग-अलग करके पहचाना नहीं जा सकता। क्योंकि कविता भावना, बुद्धि, अनुभूति, ऐन्द्रिक प्रतीतियाँ आदि के सक्रिय समन्वय का परिणाम है। एक कविता में ये सभी तत्व अभिन्न रूप से जुड़े रहते हैं।[1] कवि या सर्जक जिस परिवेश में साँस लेते हैं और जिस समय में जीवित रहते हैं, तथनुसार कविता का अनुभव संसार भी बदलता रहता है। अर्थात् कविता में अपने समय के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अनुभव किसी न किसी रूप में समाए रहते हैं। यह अनुभव प्रत्येक कवि में अलग-अलग भी है। लेकिन समकालीन कविता की मुख्य संवेदना सामान्यतः सभी कवियों में समान रूप में हैं। क्योंकि समय के दबाव से कोई भी सजग सर्जक मुक्त नहीं रह पाते हैं।

समकालीन हिन्दी कविता के आज के परिदृश्य की एक प्रमुख विशिष्टता यह है कि उसमें कम-से-कम तीन या चार पीढ़ियों के महत्वपूर्ण कवियों की

---

1. कविता का यथार्थ - सं. डॉ. अरविन्दाक्षन - पृ. 50, प्र. सं. 2003

उपस्थिति है जो आधुनिकता की संश्लिष्ट चेतना का प्रमाण भी देती है और समकालीनता को नितान्त समसामायिकता के आग्रह से भिन्न व्यापक अर्थ भी।[1] समकालीन कविता ने पूर्ववर्ती काव्य धाराओं से बहुत कुछ आत्मसात किया है ओर भाव, संवेदना और भाषा ने समकालीन कवियों का भूगोल तौयार किया है। लेकिन अतीत से जितना कुछ आत्मसात किया था उतनी वह अतीत से अलग हो जाती है। हिन्दी काव्येतिहास में जितने कालातीत विभूतियों की गणना हम कर रहे हैं वे सब असन्दिग्ध ही हैं। मगर उनमें से निराला, नागार्जुन, मुक्तिबोध का मार्ग अपनाकर उन्हीं की शैली को आत्मसात करने की प्रवृत्ति समकालीन कविता की रही है। इसलिए हम यह कह कहते हैं समकालीन कवियों पर इन्हीं कवियों का प्रभाव गहरा है। यह तो स्पष्ट ही है कि इन कवियों ने अपने युग की सीमा को लाँघकर मानव होने के आत्मसंघर्ष को तीव्रता से अनुभव करके उसे रचनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। समकालीन कविता के प्रारम्भिक दौर में इन्हीं कवियों के विचारों के साथ-साथ भारतीय परिस्थितियाँ भी समान रूप से सक्रिय रही हैं। स्वतंत्रयोत्तर भारत की विडंबनात्मक परिस्थितियों ने समकालीन कविता को दायित्वपूर्ण बना दिया। समाज, राजनीति, धर्म एवं संस्कृति के निरंतर विघटन पर प्रतिरोध लगाना समकालीन कविता का सबसे प्रमुख दायित्व बन गया। विचार कविता, भूखी-पीढी की कविता,

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - सं. परमानन्द श्रीवास्तव : भूमिका - प्र. सं. 1990

बीट पीढी की कविता आदि तत्कालीन व्यवस्था के खिलाफ अपने को उपस्थिति कर रही थी। नक्सलबाड़ी आन्दोलन केलिए प्रेरक बनी हुई कृषक समस्या और भारत की राजनीतिक हलचल, उसकी असंतृप्ति आदि ने समकालीन कविता की मूल संवेदना को पुख्ता कर दिया है। इसलिए सत्तर से लेकर अब तक लिखी गयी कविताओं का मूल स्वर जनोन्मुखता का है। तमाम प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विघटन के मूल में रौंदे गये अवाम के पक्ष में बोलना उन लोगों का मूल कर्तव्य बन गया। इस कर्तव्य को भली-भाँति निबाहने में समकालीन कविता सफल रही है। इसकेलिए बार-बार हमें निराला, मुक्तिबोध जैसे विभूतियों की कविताई की याद करनी पड़ती है।

समकालीन कविता जीवन की समग्रता की कविता है। सत्तर से लेकर अब तक की कविता में मानवजीवन के बहुआयामी स्वर मुखरित हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि जनोन्मुखता समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति रही है, एकमात्र प्रवृत्ति नहीं। इसके साथ-साथ समय के दबाव से जन्मी अन्य बहुत सारी समस्याओं का व्यापक परिवृत्त कविता में शामिल है। इन तमाम समस्याओं के मूल में जीने केलिए विवश मनुष्य से कवि का सरोकार स्पष्ट है। इसका मुख्य कारण यह है कि असंख्य कवि इसके भोक्ता हैं। उनमें व्यक्ति का निजी परिप्रेक्ष्य विद्यमान है। लेकिन वह अहंलीन परिप्रेक्ष्य नहीं है। वह अहंमुक्त है। अतः उसका व्यापना सहज होता है। एक सार्थक

प्रेमकेंद्रित और मानवीय संकट केंद्रित कविता में अधिक अंतर नहीं है। तो प्रश्न यह है कि कविता में सार्थक क्या है? कविता में सही अनुभव संसार की सूक्ष्मग्राही स्वीकृति है - "समकालीन कविता चाहे प्रेम की हो या राजनीतिक स्थिति या मानवीय संकट की - इतना निश्चित है कि एक खास समय की संवेदना इसके चित्रण के ढंग को ही नहीं, अनुभव की रूप अथवा प्रकृति को भी प्रभावित करती है।"[1]

समय के विविध वर्णी यथार्थ का अंकन प्रत्येक कवि अपने अनुसार करता रहता है। आज का समय बीते समय की तुलना मे संकटग्रस्त समय है। आज की तरह संकटापन्न स्थिति पहले कभी आयी नहीं थी। चारों ओर से हम अमानवीय शक्तियों से घिरे हुए हैं और उनके जाल में फँसकर पैर पटकनेवाले आदमी की अवस्था का बिंब कविता केलिए सहज बन गया। भूमण्डलीकरण और बाज़ारीकरण के इस दौर में मानवीयता की नृशंस हत्या में सत्ताधारियों में से कोई पीछा नहीं। साम्राज्यवादी साजिशों के परिणाम स्वरूप मनुष्य में से मानवीयता का अंश भी गायब हो गया है। समाज, राजनीति, धर्म, एवं संस्कृति में आए इस लोप ने कविता कर्म को चुनौतीपूर्ण बना दिया। अर्थात् समकालीन दौर में आकर सृजनशीलता भी अत्यंत संकट की स्थिति में पहूँच गयी है। धर्म और राजनीति का उद्देश्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया है। संस्कृति का अर्थ ही बदल गया है। मनुष्य में मनुष्यत्व भरनेवाली कलाएँ

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - सं. परमानन्द श्रीवास्तव : भूमिका - प्र. सं. 1990

बिकाऊ बन गयी हैं। उपभोक्तावाद के इस संकटग्रस्त काल में मनुष्य एक पुर्जा बनकर जीने के लिए अभिशप्त है। वर्तमान स्थिति से मनुष्य को मुक्त करने का चुनौतीपूर्ण काम संस्कृतिकर्मी होने के नाते साहित्यकार या कलाकार को भी करना पड़ता है क्योंकि कलाएँ ऐसी दीपशिखाएँ हैं जो सारा मोम बुझ जाने पर भी निष्कम्प जलती रहती है।[1]

बृहतर समय की विभिन्न प्रकार की जटिलताओं के अनेक उदाहरण आसानी से समकालीन कविता-परिदृश्य से उद्धरित किये जा सकते हैं।

यह संगीत है जो अविराम है
यह भीड़ में है
जो अकेलेपन के कक्ष में गूँजता है।
अंतिम बंदिश में
*  *  *  *
कि मैं प्रायः अकेला और हास्यास्पद हुआ
*  *  *  *
विचार मेरे पास श्रेष्ठ हैं
परंतु पराजित होता हुआ
रोज़ रोज़ वह अल्पसंख्यक हुआ जाता है
सोचता हूँ उसे रखना होगा जीवित

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 17, प्र. सं. 2001

परंतु हम सबको मिलकर ही
जो धीरे धीरे बहुत अकेले हैं[1]

कुमार अंबुज के काव्य संग्रह 'अतिक्रमण' की अलग-अलग कविताओं से ली गई इन पंक्तियों में अकेलेपन का बार-बार जिक्र आया है। गौर से पढ़ने पर यह लक्ष्य किया जा सकता है कि ये कविताएँ उस समूचे संसार की अन्तर्ध्वनियों को समेट लेती हैं, जिनके भीतर कवि का नागरिक समय बसा हुआ है। यह अकेलापन आज की उन्नत सभ्यता के जटिल विन्यास में रच-बस गई एक नई किस्म की सामाजिकता का उप-उत्पाद है। यह समाज में इन दिनों तेज़ी से बढ़ते मानवीय क्षरण का नतीजा है और इसे समय के चौतरफा दबावों के चलते उसके आन्तरिक भूगोल में हो रही उथल-पुथल के सन्दर्भ में जाँचने की ज़रूरत है।[2] आलोचक जयप्रकाश का यह वक्तव्य समय की सही पहचान से संबंधित है। समकालीन विडंबनात्मक यथार्थ का दायरा इतना व्यापक है कि कोई भी सामाजिक प्रसंग इससे मुक्त नहीं है।

यह बताया जा चुका है कि समकालीन कविता ने पूर्ववर्ती कविता से बहुत कुछ ग्रहण किया है। सामाजिक संसक्ति के संदर्भ में आधुनिक कविता अधूरी नहीं थी। मुक्तिबोध, रघुवीरसहाय, केदारनाथ सिंह, शमशेर बहादूर सिंह आदि की

---

1. अतिक्रमण - कुमार अंबुज - पृ. 52, प्र. सं. 1996
2. आलोचना - 'अवसाद और आशावाद' - जयप्रकाश - पृ 96, जनवरी-मार्च 2003

कविताएँ इसके साक्ष्य हैं। यह प्रश्न भी मुख्य है कि इन कवियों ने या दूसरे कवियों ने अपने समय की संसक्तियों को किस प्रकार व्यक्त किया है या किस पक्ष को अधिक प्रमुखता दी है। पूर्ववर्ती कविता में मूल्यों का विघटन प्रमुख विषय है। उक्त विघटन में मानवीयता का सवाल सबसे मुख्य रहा। राजनीतिक विघटन के पर्याप्त संकेत भी पूर्ववर्ती धारा ने हमें दिये थे। अर्थात् आधुनिक कविता में अंतरंग संसक्तियों का भराव था। लेकिन उसे मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में या प्रकट सामाजिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्त करने का कार्य किया गया था।

समकालीन कविता में यह स्थिति बदल गयी। समकालीन समय उथल-पुथल से भरा समय है। उसमें जटिलता आ गयी है। क्यों वह जटिल है? उत्तर इसका स्पष्ट है - एक सामान्य मानवीय संदर्भ भी व्यापक वैश्वविक संदर्भ से अलग नहीं है। समकालीन कविता के शुरुआती दौर के कवियों में प्रमुख श्रीकान्त वर्मा ने अपनी 'मगध' शीर्षक लघु कविता में विचारों की कमी का उल्लेख करके अपने स्वत्व के नष्ट होने के व्यापक संकेत दिये थे। इस तरह समकालीन कविता अपनी भाषा के समस्त सौदर्यपक्षों की सुंदरता को सुरक्षित रखने के बावजूद, अपने समाज के प्रति प्रतिबद्ध होने के बावजूद वह आज के जटिल समय को भी अभिव्यक्ति देने वाली है।

लगभग उन्नीस सौ सत्तर से लेकर अब तक की हिन्दी कविता की विकासयात्रा में थोडा बदलाव दृष्टिगत होता है। जिस समय धूमिल, राजकमल

चौधरी जैसे कवियो ने मानवमुक्ति के लिए जो चीत्कार किया था आगे की कविता भी वही चीत्कार है यह हम कह नहीं सकते। उस समय की तमाम सीमाओं के बावजूद उन लोगों ने यथार्थ के पोल खोलने का विद्रोहात्मक तेवर अपनाया। लेकिन बाद की कविता को प्रखर कहना अत्युक्तिपूर्ण होगा क्योंकि समय की कसमसाहट और उसके दबाव के संघर्ष दिन प्रति दिन बढने पर भी लड़ने का एक शांत संयमित तौर तरीका कविता में स्पष्ट झलकता है। भाषा और अन्तर्वस्तु में यह स्वभाव परिलक्षित होता है। यह भी ध्यातव्य है कि आठवें दशक के उत्तरार्ध में आयी नयी कवि पीढी में दो तरह के कवि थे। एक तरह के कवियों में इब्बार रब्बी, असद जैदी, मंगलेश डबराल, विनोदकुमार शुक्ल, विनोद भरद्वाज, कुमार अम्बुज, अशोक वाजपेयी आदि के नाम आते हैं। दूसरे तरह के कवियो में कुमार विकल राजेश जोशी, अरुण कमल, उदय प्रकाश आदि आते हैं। दोनों में समयबोध तो प्रखर है लेकिन समय के दबाव के विरुद्ध सोचने और लिखने की रीति कुछ भिन्न है। पहली कोटी के कवियों में कस्बा, परिवार घर की आत्मीय दुनिया में मानवीय राग की मौजूदगी को रेखांकित वाली कविताओं में समय के अन्तर्विरोध और उसमें मौजूद अमानवीकरण की पहचान तो थी। किन्तु दृश्य में सक्रिय अपने यथार्थ की शक्तियों को चिन्हित करने की बेताबी न थी। भय और असुरक्षा के बोध से आक्रांत थोड़ा दिलासा देनेवाली इन कविताओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है।

## अशोक वाजपेयी की कविता की सामाजिक संसक्ति

समय के यथार्थ की गहरी पहचान अवसाद के घेरे में आने के बावजूद भी कवि उम्मीद को कायम रखते हैं। कला में, शब्दों में, कविता में, अपने को, मानवीयता को सुरक्षित रखने की संभावना पूर्ण दृष्टि समकालीन कविता का एक और सरोकार है। यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि समय से मुक्ति किसी को भी नहीं। दबाव के संघर्ष से उलझने पर भी अपना रुख समय के साथ अपनाने में लेखकीय स्वतंत्रता को सृजनशील रखनेवालों में अशोक वाजपेयी का स्थान उल्लेखनीय है। 'शहर अब भी संभावना है' जो उनका प्रथम काव्यसंग्रह है जिसकी भूमिका से यह स्पष्ट हो जाता है - दुनिया की बढ़ती हुई असंगति और अर्थक्षीणता के पूरे एहसास के साथ ये ऐसी कविताएं हैं जो मानवीय होने के अनुभव और तनावों को आत्मीय स्तर पर परिभाषित करती ही हैं। ये कविताएँ दुनिया के सारे विनाश के विरुद्ध कुछ गहरे मानव संबंधों में अर्थ और संभावना की लगातार खोज भी करती हैं।[1]

तुमने देखा है सड़ने लगे हैं नगर और फल
और मरे हुए हैं गेहूँ-धानों के खेत और उछाह
उर्राकर गिरती हैं पड़ोस की दीवारें और मित्रताएँ

---

1. शहर अब भी संभावना है - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. सं. 1966

टूटते हैं दरवाज़े और बूढ़े सक्रिय लोग
पड़ोस एक सड़ाँध देता धुआँ है....
मैं एक जीवित सभ्यता लिये दौड़ा आया हूँ, लोगों ![1]

अशोक वाजपेयी के कविता संसार में जीवन के बहु आयामी रूप देखने को मिलते हैं। अपने समय में रहकर मनुष्य के केन्द्रीय प्रश्नों जैसे प्रेम, प्रकृति, मृत्यु को नज़रन्दाज़ किये जाने वाले समय में अशोक वाजपेयी एक ऐसे कवि है जो अपने ज़िद पर अड़े रहकर, अपने सरोकारों पर अपनी दृष्टि एकाग्र कर रहे है।[2] यह भी कहा जाता है कि उनकी कविता हिन्दी कविता के शोरगुल से दूर उस शान्त चौगान में भी जाना है जहाँ जीवन इकहरा या समयबद्ध नहीं है बल्कि कालातीत को अपने पड़ोस में उसी सहजता से पाता है। इसलिए यह कहना सहीं होगा कि अशोक वाजपेयी की कविता का स्वर बहुआयामी है। समय और समयातीत को काव्यात्मक अभिव्यक्ति देने में वह माहिर है। केदारनाथसिंह, शमशेर बहादूर सिंह, श्रीकांतवर्मा जैसे कवियों से अपने प्रभाव का भूगोल तैयार करनेवाले अशोक वाजपेयी में अज्ञेय का भी बहुत बडा प्रभाव है।

अशोक वाजपेयी की सामाजिक संसक्ति का प्रकट रूप हम 'समय के पास समय' शीर्षक कविता संग्रह में देखते हैं। मृत्यु, प्रेम, उम्मीद और जिजीविषा के

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. सं. 133, प्र. सं 1991
2. घास में दुबका आकाश - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. सं. 1994

कवि में इधर आकर समय का एहसास कुछ स्पष्ट है लेकिन अन्दरुनी संवेदना हमेशा जीवित भी है। शताब्दी के अंत के कगार पर खडे 'कवि', 'कुम्हार', 'लुहार', 'कुंजडा', 'कबाड़ी' आदि के मर्म कथनों का बखान ध्यान देने योग्य है।

मैं एक खिड़की खोलता हूँ
पत्थर में फूटी है
जड़े एक वृक्ष की-
जड़ों में लिपटा है प्राक्-अंधकार
अंधकार में धीरे-धीरे सरकता है काल।
नदी में बह रहा है खून, आँसू
सपने और आशाएँ
नावें शव और फूल-
अपने लादान से झुकी हुई
अदृश्य हो रही है शताब्दी।[1]

कवि के लिए रचनाकर्म एक खिड़की खोलने के समान है। खिड़की यहाँ विस्तृत अर्थ की संवाहिका है। कवितारूपी खिड़की से बाहर के बहुत सारे दृश्य वे देख रहे है और दूसरों को दिखाते भी हैं। ज़िन्दगी की रफ़तार, आशा-निराशा, सुख-दुःख, सब खिड़की हमें दिखाने का प्रयास करती है। सृजनकर्म एक पेड जैसा है जिसकी जडें नीरवता की तलाश में इधर उधर बढ़ती है। लेकिन अब रचना कर्म को नमी प्रदान

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी, पृ. 13, प्र. सं. 2000

करनेवाली जडें एक पत्थर में फूटी है। अर्थात् कविता आजकल जटिल मानवीय यथार्थ से टकरा रही है। युगान्धकार का वहन करते हुए कविता इधर उधर भटक रही है, समय भी उसमें शामिल है।

शताब्दियों से धरती को स्वच्छ एवं शीतल बनाकर बह रही नदियों में अब स्वच्छता के स्थान पर खून, आँसू, सपने, आशाएँ और शव बह रहे है साथ ही उनमें फूल और नावें भी है। समय की गति के साथ यहाँ कई अप्रत्याशित घटनाएँ घटती हैं। घटनाओं की घटाटोप में समय किसी के लिए रुकता नहीं, काल की विभीषिकाओं का वहन करते हुए शताब्दी कहीं अदृश्य हो रही है।

तोपें गरज रही है,
फटते हैं बम
मौत के घाट उतारी जा रही हैं स्त्रीयाँ -
एक बच्चा अनजान
फिर भी, समय की धार पर
बहा रहा है कुछ शब्द, कागज़ की नाव,
अपना भविष्य, उनका अतीत।[1]

समय के दबाव के बीचों बीच जिजीविषा को कायम रखने और अपने को बनाये रखने की जो लालसा है, कवि उसके जागरूक सदस्य हैं। कवि को समय की अंधता

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 13, प्र. सं. 2000

एवं उसकी क्रूरता का तीखा एहसास है। यह अनुभव अन्ततः कवि को एक बच्चे में या उनके द्वारा बनायी गयी एक कागज़ी नाव पर नज़र गढ़ाने केलिए विवश करता है। कवि आस्थावादी हैं। उनकी आस्था में अतीत, वर्तमान और भविष्य के प्रति जागरूकता सन्निविष्ट है। हाशिये में जीने के लिए अभिशप्त कुछ ऐसे जीवन को कवि अपने साथ अपनी अपनी जगह पर उम्मीद की खिडकी खोलने की चाहत रखते हैं। 'खिडकी' रूपी उम्मीद और कवि की सृजनशीलता के प्रति आग्रह उन्हें समय के तीखेपन को हल्का करने के लिए परिश्रमशील बनाता है।

अपने समाज से बेखबर रहना किसी भी कवि के लिए संभव नहीं। अशोक वाजपेयी के कविता संसार पर नज़र डालते समय हमें पता लग जाता है कि वे मूलतः उम्मीद और जिजीविषा के कवि हैं। ये उम्मीद और जिजीविषा वैयक्तिकता से परे समाज विशेष या मानव विशेष को ध्यान में रहकर कवि ने प्रकट की हैं। लेकिन समकालीन दौर की सामाजिक स्थिति बहुत खराब है। धर्म एवं राजनीति के अक्रामक रूप ने समाज में से मानवीयता को तहस-नहस कर दिया है। धर्म निरपेक्ष एवं प्रजातांत्रिक देश में आए सबसे बड़ा उपयोग इन्हीं शब्दों का चलता है कि समझो आज ऐसा कोई धर्म भी नहीं, प्रजातांत्रिक व्यवस्था भी नही। धर्म की राजनीति आजकल बहुत विकृत सिद्ध हो गया है। अपने अपने धर्म का मूल्य नष्ट भ्रष्ट हो रहा है।

भारत एक धर्म निरपेक्ष देश के रूप में जाना जाता है। लेकिन आजकल इधर धर्म के नाम पर लड़ाईयाँ और दंगे चल रहे हैं। हरेक धर्म में विद्यमान धर्मान्धों की कट्टरवादिता के कारण धर्म के बीच का फासला बढ़ रहा है। धर्म के परे मनुष्य जाति के आपसी सोहार्द्र का भाव आज सपने मात्र हैं। धर्म का राजनीति के साथ गंठबंधन असंख्य सांप्रदायिक दंगे के भभकाने के लिए कारण बन जाते हैं। धर्मों के बीच का फासले के बढने के साथ-साथ वर्गगत शोषण का सिलसिला ज़ारी है। उच्चवर्ग द्वारा हाशिये पर फेंके दिये जाने वाले निम्नवर्ग विशेष कर दलित वर्ग आज अपनी शक्ति को संजोकर मुक्ति के लिए लडाई लड रहा है। फिर भी शोषण और अत्याचार में कोई कमी नहीं। दलित उन्नयन के लिए भारत भर दलित एवं गैरदलित साहित्यकारों के माध्यम से कठिन प्रयास हो रहा है। लेकिन सत्ता की राजनीति उन लोगों को हमेशा अपने दबाव में दबोचती हैं।

अशोक वाजपेयी के प्रथम काव्य संग्रह से लेकर व्यक्ति का समाज की ओर जाने की प्रवृत्ति विद्यमान है। समाज की वास्तविक स्थिति से परिचय एवं उससे प्रतिकृत होने का स्वभाव इधर है। कवि अपने अनुसार समय के आतंक के विरुद्ध अपना एक समय रचता है। मौन की अतिरंजित शक्ति पर कवि भरोसा रखते है। 'लोगों' के बीच से एक यात्रा शर्षक कविता की पंक्तियाँ हैं -

UNIVERSITY LIBRARY
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
Cochin - 682 022

लोग हैं और उन्हें रोज़ देखता हूँ
पर मेरे और उनके बीच एक मौन है
जिसमें बोल रहा हूँ, चिल्ला रहा हूँ
उन तक पहूँचे
स्वतंत्र मौन को कुचलकर, मुक्त
वे मेरे पास हों
और उनके चेहरे में जब चाहूँ
सपनों में देख सकूँ।[1]

लोगों की वास्तविकता को शब्द बद्ध करने की इच्छा इधर से शुरू होती है। लेकिन वह रुकी नहीं। कई मोड़ों से, कई कोनों को आंककर ये कविताएँ किसी संगीत की तरह हमारे भीतर बहुत कुछ छोड देती हैं। आदमीयत, और मानवीय मूल्यों के ओझल हो जानेवाले समय में ये कविताएँ शांत एवं संयमित होकर अपना अलग स्वर बुलंद करती हैं। इसी संकलन में ही स्वतंत्र रूप से लिखी गयी कुछ संबद्ध कविताएँ हैं। 'एक कविता क्रम' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है -

वह मुझे पहचानता नहीं था
ओर मैं उसके पास जाना चाहता था
जब किसी ठिठरती शत में
वह किसी ढाबे में भूख से व्याकुल

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 95, प्र. सं. 1966

गोरत की बोटियाँ चूस रहा होता था
*  *  *  *
वह अपने हाँठों पर बार-बार जीभ फेंक रहा था
उसकी आँखों दूर सडक के मोड़ पर टिकी थीं
सबके पार/वह अब बिलकुल अकेला था।[1]

समाज के ऐसे असंख्य 'पराजितों' में से एक भूखे, अकेले जीव को दिखाकर कवि ने समय के सुपरिचित दृश्य एवं खतरनाक समस्या की ओर इशारा किया है। ये दृश्य प्रत्येक व्यक्ति के अगल-बगल में है। ज़्यादातर हम लोग उन दृश्यों को अनदेखा करते हैं। लेकिन कवि यह अपनी कविता के माध्यम से दिखाते हैं। वह अकेले जीव आँखों के सामने से कहीं गया है। कवि उस असफल ईश्वर के पास लौट आये हैं। कवि यकीन करते हैं कि अकेलेपन से पीडित, बुनियादी ज़रूरतों से वंचित वह जीव ईश्वर से, नैतिकता से, कोसों दूर है। 'निश्शब्द' शीर्षक कविता में चारों ओर व्याप्त अमानवीयता का एक पृथक अंकन हुआ है -

एक ऊँची इमारत की पाँचवी मंजिल की
एक खिड़की से
एक आदमी ने अपने को बाहर फेंक दिया है
मेरे शब्द उछलकर
उसे बीच में ही झेल लेना चाहते है

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका-तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 104, प्र. सं. 1966

पर मैं हूँ / कि दोड़कर लिफट में चढ
दफ्तर तक जाता हूँ
पता लगाने
कि नयी जगह पर नियुक्ति कब होगी?[1]

महानगरों एवं शहरों में व्याप्त अनैतिकता एवं अमानवीय व्यवहार का उल्लेख इधर हुआ है। आगे यह और खतरनाक रूप धारण करता है। बीच में से किसी का तिरोहित हो जाना आज कोई बड़ी बात नहीं है। सब अपने-अपने कार्यों में व्यस्त हैं। किसी दूसरे के लिए, उनकी भलाई केलिए व्यर्थ व्यतीत करने के लिए आज के मनुष्य के पास समय की कमी है। एक तरह से मानवीय चेतना के ओझल हो जाने का समकालीन यथार्थ का चित्रण इधर मिलता है। कवि यह कहना चाहते हैं -

मैं ने साफ पहचान किया चतुराई से
कि उनसे अलग रहकर
अपने का बचा पाना
नहीं रह गया है।
मैं निकला था बाज़ार में...
अपने नवजात बेटे केलिए
एक नाम खोजने।[2]

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका-तिनका-भाग-1) - अशोक वाजपेयी - पृ. 108, प्र. सं. 1966
2. एक पतंग अनंत में - अशोक वाजपेयी - पृ. 181, प्र. सं. 1984

समय एवं समाज के यथार्थ से वाकिफ कवि यह चाहते हैं कि ऐसे लोगों से जो समाज के शोषित दमित औसत जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त है। उससे मिले बगैर हम आगे बढ नहीं पायेंगे। विश्व का ऐश्वर्य कहीं चुपचाप जलता रहता है। प्रेम का नाम देने लायक कोई भी दृश्य आस पडोस में नहीं रह गया है। सूली पर चढाये गये ईसा मसीह, इस कलंक से उत्पन्न अकेलेपन से ये जनता कब मुक्त हो पायेगी? समय के ऐश्वर्य का कहीं लोप हो गया है। कहाँ? कब? क्यों? कैसे? जैसे सवालों के लिए इतिहास जवाब देंगे। अपने तीसरे संग्रह 'अगर इतने से' में आकर इसलिए कवि कहना चाहते हैं-

अगर इतने से काम चल जाता
तो मैं जाकर बुला लाता देवदूतों को
कम्बल और रोटियाँ बाँटने के लिए।
आत्मा के अंधेरे को
अपने शब्दों की लौ ऊंची कर
अगर हरा सकता/तो मैं अपने को
रात - भर
एक लालटेन की तरह जला रखता।[1]

हर कहीं व्याप्त अंधेरे के खिलाफ कवि अपने को एक लालटेन की तरह जलाना चाहते हैं कवि शब्दों पर भरोसा रखते हैं, भाषा के द्वारा कविता में मानवीयता का,

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 223, प्र. सं. 1986

रोशनी का संदेश फेलाने के आग्रही कवि मन इधर दृष्टव्य है। समय से कवि अनुरोध करते हैं कि समय मुझे सिखाओं घाव कैसे भर जाता है? तेल के चुक जाने के बाद भी मैं अपनी रोशनी कैसे बचाए रखूँ? ताकि उधार लाई किताब एक रात में लड़का पूरी पढ़ सके।

समय मुझे सुनाओ वह कहानी
जब व्यर्थ पड़ चुके हो शब्द,
अस्वीकार किया जा चुका हो सच,
और बाकी न बची हो जुझने की शक्ति
तब भी किसी ने छोड़ा न हो प्रेम,
तजी न हो आसक्ति
झुठलाया न हो, अपना मोह[1]

कवि समय से अनुरोध करते हैं कि हमें वह अजेय गाथा सुनाएँ जिनमें अंत तक बिना झुके, बिना गिडगिड़ाये या लडखडाये, थके-हारे अपने अंत की ओर चला जाय। अंधेरे में हाथ थामने, सुनसान में गुनगुनाहट भरने, सहारा देने, धीरज बँधाने, अडिग रहने, साथ चलने और लड़ने का कोई गीत है तो कवि समय से यह सुनाने का अनुरोध करते हैं ताकि समय के दबाव में दम घुटने वाले थोडे दिलासे का अनुभव कर सके।

---

1. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 363, प्र. सं. 1989

कड़कती या मुलायम आवाज़ में
मुझे अपनी तुच्छता का लगातार एहसास करता हुआ
यह समय बताता है कि
एक और जंजीर तैयार है
हम जैसों के लिए।[1]

बीच-बीच में समय के दबाव में कभी वे शिखर जाते हैं। लेकिन थकना और हारना वे नहीं चाहते हैं। अतः शब्दों के द्वारा कवि असमाप्य लड़ाई जारी रखना चाहते हैं। शब्दों और सपनों के अर्थ बदल रहे हैं। पोशाकें, पताकाएँ, गालियाँ, हाथियार सब चीज़ें बदल रही हैं। यह शताब्दी बच्चे को सहेजने और सभलने का समय है -

यह बच्चों के सरल संसार से
सपने चुराकर अपनी झोली में रखने का
यह अपने खुरदरे हाथों को
अपने लहुलूहान शब्दों को
आँखों में पानी की आखिरी लकीर की तरह
बाकी उम्मीद को
सहेजने का समय है।[2]

शब्दों पर भरोसा रखनेवाले कवि यह उम्मीद कायम रखना चाहते हैं। बच हुए सच को खराब होने से कवि अन्तर्जगत की सूक्ष्म सचाई को शब्दों के द्वारा सुरक्षित

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 101, प्र. सं. 1991
2. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 118, प्र. सं. 1991

रखना चाहते हैं। प्रेम, उम्मीद, जिजीविषा, पुरातन स्मृतियाँ, प्रकृति का अनुभव, सपने सबकुछ आज के उद्दण्ड समय में तिनके के समान हमें सहारा देंगे। इसलिए इन्हीं को कविता के द्वारा कवि बचाना चाहते हैं।

यह अभिषेक का समय है
जीने के धूल-धक्कड
मैल-कलुष को तजने का समय।
शब्द को/सुधर विन्यास को
छन्द प्रास को
प्रणति की तरह
अज्ञात के सामने अर्पित करने का समय।[1]

बचे हुए को सहेजकर कवि आज की लड़ाई में भाग लेना चाहते हैं। शब्दों से, कविता से यह संभव है, जो कवि के मर जाने के बाद भी अक्षुण्ण रहेगी। शब्द से उम्मीद, कविता, जीवन से उम्मीद कवि में समाप्त नहीं होती है। लगभग 1960 से लेकर रचनारत कवि में समय के साथ संवेदना भी बदलती रही हैं। समय की संवेदनाओं के बदलने पर भी यथार्थ के अनेकों विभीषिकाओं के रहते हुए भी अपनी अद्यतन कविता तक में कवि उम्मीद एवं भरोसा कायम रखते हैं। अगर देर हो गयी है तो उस थोडे से समय में कवि छोटे सच को बचाना चाहते हैं। यदि इस जन्म में न हो तो अगले जन्म में -

1. बहुरि अकेला (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 195, प्र. सं. 1992

उम्मीद की आखिरी ट्रेन के छूट जाने के बाद
सुनसान प्लेटफॉर्म पर फैले कचरे और धूल के बीच
अगले साफ-सुथरे जन्म की प्रतीक्षा का समय-[1]

पुनर्जन्म के बारे में कवि की संकल्पना जिजीविषा से उपजी हुई संकल्पना है। इस अवधारणा के मूल में जीवन को पवित्र एवं सार्थक न बना पाने का दुःख मौजूद है। समय की झंझट, उलझन, दबाव आदि जीवन को पवित्र, सार्थक एवं भरने से रोकते हैं।

शताब्दी के अंत के कगार पर हाशिये पर फेंके गये कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों के मर्मकथनों का मार्मिक अंकन कवि ने किया है। 'समय के पास समय' शीर्षक अपने संग्रह में कवि, कुम्हार, लुहार, बढ़ई, मछुआरा, कबाड़ी, कुंजडा आदि का मार्मिक कथन आज के समय एवं समाज की एक लेखा-जोखा है। अपने-अपने ढंग से ये सब समाज को देख रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं। धंधयी लाचारी से समय को ठीक करने, और मानवीयता के ओझल हो जाने से बचाने की इच्छा इनमें व्याप्त है। बढ़ई का विचार उल्लेखनीय है - वह कह रहा है कि मैं सिर्फ रंदा नहीं चलाता या ठोंक-पीटता ही नहीं हूँ। काम करते वक्त ज़रा सोचता भी हूँ। कभी कभी रंदा करते समय लकड़ी के छल्ले छिल-छिलकर ज़मीन पर गिरते हैं तो वह उनसे उलझकर कुछ सपने देख रहे हैं।

---

1. अभी कुछ और - अशोक वाजपेयी - पृ. 331, प्र. सं. 1998

अभी परसों से रंदा चलाते हुए खयाल आया कि
लोगों के बीच जो मनमुटाव है
उसे रंदे से छीलकर फेंका नहीं जा सकता है?
ऐसा हो पाता तो शायद यह दुनिया
किसी नयी बनी मेज़ की तरह
चिकनी और समतल हो जाती[1]

व्यक्ति-व्यक्ति के बीच व्याप्त दुरी से कवि चिंतित हैं। संबंध में जो आत्मियता है वह पवित्र है। ऐसे पवित्र संबंध को कायम रखना मानवीयता को कायम रखना है, मनुष्य बनना है। लेकिन स्थिति बहुत उजड़ गयी है। व्यक्ति व्यक्ति के भीतर जो गलत अवधारणायें जड जमा चुकी हैं, उसे दूर किए बिना मनुष्य अपनी गहराई में छिपे हुए प्रेम एवं भ्रातृभाव को समझ नही पाता। दिन प्रति दिन की घटनाएँ मनुष्य को स्वयं पहचानने के लिए अवसर नहीं देतीं। परिणामस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति के बीच का फासला बढ रहा है। बढई का आग्रह लोक हितकारी है। बढई सन्देह कर रहे है कि -

हमारे पास सब औजार है, हुनर और हिकमत भी
फिर भी यह दुनिया इतनी आड़ी तिरछी और बेडौल क्यों
पड़ी हुई है?
यों शुरू में ही यह ईश्वर बढई कहाँ था?"[2]

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 20, प्र. सं. 2000
2. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 21, प्र. सं. 2000

इतने सारे आधुनिक औजारों के रहते हुए भी मनुष्य जीवन ठीक-ठाक नहीं चल रहा है। सामाजिक कारणों से यह समाज इतना बेडौल हो गया है। वह ईश्वर बढ़ई शुरू में कहाँ था? जों आकर अपने ही हाथ से इस सामाजिक गठन को ठीक कर सकता था। कभी न साक्षात्कृत होने लायक नहीं है समझकर भी बढ़ई कह रहा है

मैं कभी कभी सपना देखता हूँ कि
मैंने आसमान के बराबर एक मेज़ बनाई है
और उसपर सबको खाने का न्योता दिया है
हर रंग के लोगों को, ब्राह्मण और अछूत को
चिडियों, गिलहरियों, सिंहो, और नक्षत्रों को,
बूढ़े देवताओं, सैनिकों, नाइयों और मछुआरों को[1]

बढई को इसप्रकार के एक सपने देखने के लिए विवश बनानेवाले माहौल में वह कुछ भी बन नहीं पा रहा है क्योंकि उन्हें आग्रह है कि बीत रही इस शताब्दी एवं समय को छीलकर ठोंक और पीटकर पैसे चीजड में क्यों नहीं बदल सकता जिसमें सारी दुनिया और सारे लोग एक साथ समा जाए, और वहाँ कोई भेदभाव न हो, सब एक दूसरे के पडोसी हो जाएँ, एक के पुकारने पर दूसरे दौड पडे। एक के घबराने या परेशान होने से कोई सहारा देने को आगे बढ जाएँ। बढई की इच्छा है कि समय

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 21, प्र. सं. 2000

एवं समाज की स्थिति ठीक उल्टी हो। विपरीत परिस्थिति में बढई की यह कामना बहुत महत्वपूर्ण है। वैसे यह गलत समय का सही बयान लगता है।

धर्म और राजनीति के अतिशयकारी गठबंधन ने सामाजिकों के बीच के दरार के व्यापने के कारण बने हैं। धर्म और राजनीति का दृष्टिकोण इकहरा, संकुचित एवं संकीर्ण है। संकुचित दायरे में रहकर धर्म का प्रचार, संस्थापन, मनुष्य का परिष्कार एवं उद्धार कतई संभव नहीं। मूल धार्मिक सिद्धांतों के कुपाठ ने धर्म के पवित्र एवं आदर्श रूप को नष्ट कर दिया है। गीता, कुरान एवं बाईबिल को अपने सुविधानुसार व्याख्यायित कर धार्मिक नेताओं ने धर्म के सही आदर्श को दूर फेंक दिया है। इसलिए कवि को कहना पड रहा है कि

> क्या मैं, ऐसी प्रार्थना कर सकता हूँ
> जो बच्चों की हँसी जैसी खिल खिलाहट हो,
> सुदूर वन प्रांतर में बहते निर्झर की तरह
> स्वच्छ ओर निर्लक्ष्य हो।
> जो फिर भी किसी और जगह नहीं
> इसी संसार में प्रेम और सुन्दरता को नष्ट करते
> समय का प्रतिरोध हो?[1]

प्रार्थना करना असल में प्रतिरोध करना है। क्योंकि आजकल प्रार्थना नहीं हो रही है। बिना इच्छा से आज कोई प्रार्थना नहीं कर रहा है। हर किसी प्रार्थना में एक न एक

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी - पृ. 40, प्र. सं. 2002

आग्रह विलीन रहता है जिसके साक्षात्कार के लिए निर्लज्ज, प्रार्थना हर कहीं हो रही है। कवि-मन इसलिए चाहता है कि

क्या में ऐसी प्रार्थना कर सकता हूँ
जिसमें तुमसे
तुम्हारी दया और करुणा से
तुम्हारे उदार क्षमाशील चरित से
अपने लिए किसी के लिए कुछ न माँगूँ?[1]

धर्म की राजनीति ने उसे एक संस्था के रूप में बना दिया है। इंस्टिट्यूषनलाइसड् होने का खतरा बहुत सारे हैं। एक संस्था है तो उसका एक मुखिया होता है। उसका कुछ सहायक नेता होते हैं और कार्यसंचालन के लिए निर्धारित कुछ नियम होते है। इतने होने पर धर्म की गुलामी पूर्ण हो जाती है। धर्म की स्वाधीनता उसकी स्वाभाविकता, खुलापन, आश्रयकारी वृत्ति नष्ट हो जाती है। इन संस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्धा का भाव भी बढ रहा है। सत्ता संस्थापन के लिए दंगे चलते हैं। वास्तव में धर्म जिस किसी के लिए उपस्थित होता था, उनसे धर्म कोसों है। 'ईश्वर के चार विलाप' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ गंभीर विचार की माँग रखती है। ईश्वर कह रहा है मुझे बूढा होना या थकना नहीं चाहिए था। लेकिन बूढ़ा, थका और अकेला मैं अपनी ही रची सृष्टि में कैद हो गया हूँ। कभी कभी मैं इसलिए रोता हूँ कि मैं ने

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 30, प्र. सं. 2004

अपने सिवाय किसी को अनश्वर नहीं बनाया था। लेकिन यह एक सत्य है कि दूसरे किसी को अनश्वर न करने वाली अनश्वरता किस काम की है। धर्म और ईश्वर की पवित्रता को व्यापकता देने लायक परिस्थिति आज लुप्त हो गयी है। इसलिए ईश्वर को कहना पड़ता है।

मैं ने यह दुनिया बनायी थी
क्योंकि मैं खुद को देखना चाहता था
और अब पछताता हूँ कि इस आइने को हुआ क्या
यह कैसे ऐसा हो गया कि
मेरा अक्स उसमें टुकड़ों-टुकड़ों में बिखरा नज़र आता है।
*  *  *  *  *
कभी-कभार मुझे लगता है कि
क्यों मैं ने आदमी को समय दे दिया
जिसे उसने इतिहास में संहार में बदल दिया
समय का अर्थ ही अत्याचार हो गया।[1]

ईश्वर के इस विलाप को अनसुना नहीं किया जा सकता। समाज की स्थिति तैयार करने में धर्म और राजनीति का समान योगदान हैं। धर्म के बिना, या राजनीति के बिना समाज की कोई परिकल्पना संभव ही नहीं। ऐसे में खतरनाक समय से धर्म को, मनुष्य एवं समाज को बचाने केलिए कवि अपनी रचनाधर्मिता का सार्थक उपयोग

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 76, प्र. सं. 2000

कर रहे हैं। इन्हीं कविताओं में अशोक वाजपेयी का सामाजिक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

उम्मीद और सपने देखने वाले कवि का बीच में पैर फिसल जाता है। कविता जीवन को सहेजती है सपने को बचाती है और गिरने से संभालती है। स्मृतियों और अन्तर्ध्वनियों से हमें ढाढ़स बँधाती भी है। लेकिन इतिहास के इस कठिन समय में आकर कवि पहचानता है कि 'उम्मीद की कोई जगह नहीं।' इस शीर्षक कविता में अपने समय की संकीर्णता और अंधेरे की पहचान ज़रूर है। प्रकृति और पड़ोस में दृश्य तो पहले का जैसा है। लेकिन कोई भी दृश्य उम्मीद को बढाने लायक नहीं है। बुढ़िया अपने बेहतर दिनों के लिए कुछ जोडकर रखने का जतन करती है। लेकिन इससे फायदा ही क्या है -

कविता में उदास अंधेरा छाया रहा -
शब्दों के बजाय चुप्पियों से काम चलाया लोगों ने
हत्यारे आए/जश्न मनाते हुए
रक्तरंजित गौरव से दमकते हुए
और उनकी आँखों ने कोई आँसू
कोई किर किरी न थे
मँझरात नींद न आने पर
उसने दरवाज़ा बन्द कर दिया
प्रेम पर सपनों पर[1]

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 77, प्र. सं. 2004

समय की यंत्रणा इतनी बढ़ गयी है कि उससे बचने की कोई उम्मीद नहीं रह गयी है। कवि एक दार्शनिक के समान अपने अस्तित्व के बारे में सोच रहे हैं। कभी वे स्वयं से पूछने लगते हैं कि मैं कहाँ से आया हूँ, कहाँ की ओर जा रहा हूँ, समय कहाँ जा रहा है आदि। इतने सारी बरबदियों और तहस-नहस के बाद आखिर यही दुनिया का स्वभाव है। नश्वर या क्षणिक जीवन का बोध आते ही कवि कहने लगते हैं -

दुःख के कई नाम हैं
जैसे प्रेम, कविता अकेलापन।
दुःख बहुवचन है।
सुख के इतने नाम नहीं। वह प्रायः एकवचन।[1]

समय के कगार पर आकर अंत में कवि महसूस करता है कि आज प्रेम करने से मतलब है दुःख झेलना। क्योंकि आज प्रेम जैसी चीज़ नहीं रह गयी है प्रेम की पवित्रता, रहस्यात्मक आनन्द सब कहीं खो गया है। ऐन्द्रजालिक तकनीकी और उपनिवेशवादी दबाव में पड़कर प्रेम के लिए कोई जगह और थोड़ा समय नहीं रह गया है। प्रेम से मतलब संसार के ऐन्द्रिक अनुभव से है। संसार रूपी रहस्य को जानना और अनुभव करना वास्तव में जीवन है। लेकिन इन्द्रिय की स्वाधीनता की बात उठानी चाहिए। क्योंकि मनुष्य मूलतः अस्वतंत्र है। शरीर से, मन से, मस्तिष्क

---

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 62, प्र. सं. 2004

से और अनुभव से। ये सब एक महा दुःख में परिणत हो जाते हैं या तो यह दुःख का दूसरा नाम बन जाता है। इस सच्चाई को कविता में उतारना भी दुःख की बात है। इन यातनापूर्ण अनुभवों से टकराकर, आतंकित मन बहुत अकेला हो जाता है। इतना कुछ कहने के बाद कवि निष्कर्ष निकालता है कि आखिर यही तो जीवन है। जीवन तुलना लहरियादार समुद्र से की जाती है। शांत होना इसका लक्षण नहीं है।

जो दुःख पाएँगे
आखिर वही पार उतरेंगे
जो सुख में रहेंगे
मँझधार में ही डूब जाएँगे।[1]

इस वक्त कबीर की याद यों ही आ जाती है क्योंकि मध्यकालीन अंधेरे को अपने ज्ञान रूपी आलोक से भरनेवाले कबीर की पुनः आवश्यकता पड़ रही है। समय रूपी चादर मैला हो गया है और चादर पर कहाँ कहाँ के दाग पड़ रहे है। समय और जीवन दोनों मैले हो गये हैं इसलिए कवि का कहना है -

झीनी हो गई है चादर,
ताने-बाने कुछ छितराने से लगे हैं
पास पड़ोस में कोई कबीर नज़र नहीं आता
जिसे यह चादर दे आऊँ कि

---

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी, पृ. 62, प्र. सं. 2004

वक्त मिले तो इसे रफू कर दे
या किसी भरोसेमंद साबुन से धोकर
कुछ तो उजला कर दे![1]

समय, इतिहास, सच्चाई को लेकर बीसवीं शताब्दी के अंत में जो दृश्य हाशिये पर से दीखता है उसे अशोक वाजपेयी अपनी कविता के केन्द्र में ले आए हैं। कबीर भी एक तरफ से किनारे पर था। लेकिन उलझन भरे समय से बचने के लिए अतीत की कुछ कडियों को हमेशा साथ जोड़ना पड़ता है।

अशोक वाजपेयी की कविता में जीवन का चित्रण समग्रता में उपलब्ध है। पास-पडोस, घर-परिवार सपने-स्मृतियाँ, उम्मीद-जिजीविषा और समय की सच्चाई का मिला जुला बोध उनमें प्रखर है। ये उन्हें जीवन की बहुस्वरता के कवि बनाते हैं। अपने प्रारंभिक कविता संग्रह से लेकर अब तक प्रकाशित अंतिम संग्रह तक में समय का बोध और उम्मीद का स्थापत्य लगभग समान रूप से सक्रिय है।

**राजनैतिक संकेतों की सामाजिकता**

समाज में जीवन और उसकी संस्कृति के रूपायन में राजनीति एक अविभाज्य अंग है। शासक और शासित ऐसा सामाजिक संगठन जो बहुत पुराना ही है। अशोक वाजपेयी के काव्यलोक में राजनीति का कोई सीधा सरोकार नहीं है।

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी, पृ. 52 , प्र. सं. 2000

मानवीय संसक्ति ही उनकी कविता का मूल स्वर है। लेकिन कुछ कविताओं में राजनीतिक संकेत प्रकट होते हैं। क्योंकि एक सजग सामाजिक को राजनीति के प्रति आँखें मूँद लेना संभव भी नहीं। इतिहास पर नज़र डालने पर ऐसे असंख्य मोड मिल जायेंगे जहाँ राजनीति की मानव संस्कृति पर दखल दिखायी देती है। मानवजाति की शुरुआत से लेकर सत्ता का लोगों पर द्वन्द्व रहा है। इस द्वन्द्व का अत्यंत खतरनाक रूप आज हमारे सामने है। सत्ता पर आरूढ होनेवालों में अधिकार की मनोवृत्ति आति प्रबल है चाहे यह विदेशी हो या स्वदेशी। वैश्विक स्तर में साम्राज्यवादी साजिश के तले दमघुटनेवाले तीसरी दुनिया के देशों की स्थिति इसके सबूत है। अशोक वाजपेयी की कुछ कविताओं में इसकी झाँकी देखने को मिलती है। धर्म, राजनीति और संस्कृति पर होनेवाले हमले अनगिनत हैं।

वे उस सबको मौका मिलने पर राख कर देना चाहते हैं
जो उनका नहीं है और कभी नहीं होगा
रहीम की दूकान अब्दुल का दाबा, करीम का ठेला
उसके बगल में रामस्वरूप का स्टोर
और यशोदाबाई की खोली।
जलाने-बुझाने का उन्हें लम्बा अभ्यास है
नष्ट करने का सुख वे बरसों से जानते हैं
रचने और बचाने के अवसर उन्हें कम मिले है[1]

---

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी - पृ. 40, प्र. सं. 2002

राजनीतिक या अधिकार की बर्बरता का एक अच्छा - खासा रूप 'विलाप' शीर्षक कविता में अशोक वाजपेयी प्रस्तुत कर रहे हैं।

ऐसा शहर नहीं खोज पाया
जिसके चारों ओर परकोटा हो बर्बरों को रोकने के लिए
जिसपर उपहारस्वरूप खिली हो
फूलों की रंगरंग क्यारियाँ,
जिसके बाज़ार में बागदाद की कमिखाब बेचते हों सौदागर
अमरीकी सैनिकों को
बीच चौक में पुस्तकालय हो किसी राजप्रसाद से अधिक भव्य
जिसमें बटन दबाते ही
कबीर और शेक्स्पीयर की पंक्तियाँ आ जाएँ[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कविता से कवि क्या उम्मीद रखते हैं। समूचे विश्व मानस् में उथल पुथल मचाकर जो भयानक नरहत्या इराक् में हुई थी उस पाप को धो डालने के लिए मानवजाति को कितने जन्म तप करना पडेगा। इस सच्चाई के एहसास के साथ कवि यह सोच रहे हैं कि आगे इसे रोकने के लिए मैं क्या कर सकता हूँ, दूसरे क्या कर सकते हैं? मानवीयता पर किया गया यह भयानक आक्रमण मानवेतिहास में लहुलुहान शब्दों में हमेशा अंकित रखेगा। लेकिन संघर्ष और युद्ध की मानसिकता

1. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 30, प्र. सं. 2004

को बदलने के लिए कबीर और शेक्सापियर जैसे कवि हमारी सहायता करेंगे। इन्हीं पूर्वजों में इसकी अदम्य शक्ति पुंजीभूत है। कविता से मानवीयता को बचाने के अथक प्रयास पर कवि विश्वास करते हैं।

अपने समय का सच,
अपने समय में आदमी के धीरे-धीरे
गायब हो जाने का सच,
चीज़ों लालच और डाह के बढ़ जाने
और जगह के कम होते जाने का सच,
दिन-ब-दिन भरोसा न किए जाने का सच,
बडे सच के भ्रम में
छोटे-छोटे सचों को हिकारत से
घूरे पर फेंक दिए जाने का सच
दूसरों के दिए ढाँचे में
अपने को लगातार ढालते रहने का सच....[1]

'धूल की तरह सच' शीर्षक इस कविता में भी सच के विविध रूपी चेहरे का चित्र कवि रख रहे हैं। सच के धीरे धीरे गायब हो जाने वाले समय में धूल की तरह दूर कहीं सच का लोप कवि अनुभव करते हैं। सचाई की विजय कभी नहीं हुई, न होगी। क्योंकि समय गलत पथ पर है। पर गलत समय में भी आद्मी लडाई समाप्त नहीं

---

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 56, प्र. सं. 1989

करता। देवताओं और योद्धाओं से उदासीन होकर वह आदमी के सच की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है -

वह आदमी / लडता है
अपने आदमी बने और बचे रहने की
कहीं भी दर्ज न हो जानेवाली
एक पवित्र लडाई[1]

मनुष्य बने रहने और अपने सच को बचाये रखने के लिए हरेक सर्जक लड रहे है। अपनी रचना में भरोसा रखनेवाले कवि उसी के माध्यम से समय के सच और मनुष्य के सपने, उम्मीद और स्मृतियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं।

सारे अंधेरे के बावजूद
शब्दों में
कुछ तो रोशनी बचेगी
सच की रोशनी
खून की रोशनी
जलकर भस्म हो गये जंगल में
छोटी-छोटी पत्तियों की हरी रोशनी।

*  *  *  *

कुछ बचेंगे शब्द

---

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 39, प्र. सं. 1989

तो कुछ बचेगी रोशनी भी
और रोशनी बचेगी
तो कुछ यह दुनिया भी[1]

सामाजिक जीवन की विघटनात्मक स्थितियों की तरह राजनीतिक क्षेत्र की विघटनात्मक स्थितियों ने भी हमारे औसत जीवन को निरन्तर प्रभावित किया है। राजनीति का संबंध प्रायः अधिकार और सत्ता से रहता है। इस कारण से जीवन की समस्त स्थितियों में राजनीति की घुसपैठ होती है। विघटनात्मक स्थितियाँ जीवन की संभावनाओं को, उसकी संलग्नताओं को नष्ट कर देती है। अशोक वाजपेयी की कविता में इन्हीं बातों की कवितात्मक प्रतिक्रियायें कविता की शर्त पर अभिव्यंजित हैं।

**सामाजिक संसक्तियों के केन्द्र में उभरता मनुष्य बिंब**

अशोक वाजपेयी की कविता के मुख्य सरोकारों के केन्द्र में मनुष्य ही है। कविता में जीवन को बचाना, जीवन में मनुष्य को बचाना उनके अनुसार कवि कर्म है। अशोक वाजपेयी की लंबी काव्ययात्रा को तराशने पर इसमें खास कोई बदलाव देखने को नहीं मिलता है। लेकिन समय, परिवेश के अनुसार कविता में मनुष्य के चेहरे तो बदलते रहे। वह मनुष्य कभी संगतिकार, चित्रकार, बालसखा, बेटा, बहन, माँ बाप, पोते, कबीर, पूर्वज, हो सकते हैं। काव्य के निर्बाध प्रवाह में इन सभी के

---

1. अभी कुछ और (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 320, प्र. सं. 1996

मूल में जीवित मनुष्य कोई न कोई उत्तरदायी रूप ग्रहण करने लगता है। प्रेमी, साधक, ऐसे अलग-अलग रूपों में मनुष्य आने लगते हैं। एक ही बिंब के बहुरंगी रूप।

वैश्वीकरण, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद आदि उपनिवेशवादी औजारों से घायल समाज एवं मनुष्य को बचाने का कवि-प्रयास सराहनीय है। संबंधों की आत्मीयता, एवं अंतरंगता को वापस लाकर, घर की ओर का वापसी सफर उनके मनुष्य होने का पहला प्रमाण है। अशोक वाजपेयी का मुख्य विचार है सच कभी खराब न हो जाए। 'नाम की खोज में' शीर्षक कविता में अपने में सीमित न रहने में निहित सच को उजागर करने का प्रयास वे कर रहे हैं -

एक बट्टी साबुन खरीदने
और इस बहाने अपने नवजात बेटे के लिए
एक नाम खोजने।
पत्थर, आँसु, गैस और लाटियों के
मुहावरे में से गुज़रकर
मुश्किल था किसी
शान्त और भले शब्द की ओर जा सकना।[1]

कवि असल में अन्दरूनी तहों पर निरन्तर विचरनेवाले है। लेकिन अपने आस पडोस के बीच से गुज़रे बिना उनका अस्तित्व संभव नहीं। पडोस में, गली मुहल्ले में आहत हुए मनुष्य को अनदेखा कर आगे बढ़ना नामुमकिन है।

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी पृ. 182, प्र. सं. 1984

लोग है और उन्हें रोज़ देखता हूँ
पर मेरे और उनके बीच एक मौन है
जिसमें मैं बोलता हूँ और चिल्लाता हूँ
कविताएँ[1]

असंख्य ऐसे लोगों को वे देखते हैं। उन सभी को वे जानते हैं। दोनों के बीच अपरिचित होने के कारण जो मौन है वह बहुत सार्थक है। वह मौन ही कविताओं में शब्द प्रदान करता है। मौन को तोड़कर कवि जो कुछ कहता है वह उन तक पहूँचे यही आशा है। कविता के सघन मौन की आड में जीवित मनुष्य बिंब अशोक वाजपेयी की कविता की मुख्य पहचान है। वह मनुष्य समय के शिकंजे में बंधित मनुष्य है।

'उसने कहा' शीर्षक कविता में कवि ने समय की शून्यता, एवं जटिलता को उकेरा है। समाज से प्रेम यह कह कर गया था कि में थोड़ी देर में वापस आता हूँ। लेकिन प्रेम के वापस आने लायक रास्ता कहीं भी नहीं था। आज की विडम्बनात्मक स्थिति में प्रेम का मूल्य कहीं गायब हो गया है। प्रेम का आदर्श कहीं लुप्त हो गया है। जीने की झंझट में आमग्न मनुष्य को वक्त नहीं। वक्त का अभाव और दबाव दोनों ने उसे घेर लिया है। स्वयंसृजित अंधेरे की व्याप्ति ने व्यक्ति से समाज तक, समाज से हर कहीं, हर मोड पर कब्जा कर लिया है। उस अंधेरे में मानवीयता

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 94, प्र. सं. 1966

की नृशंसा हत्या हो रही है। यह अंधेरा मनुष्य के भीतर और बाहर समान रूप से छा गया है। यह सबसे विड़बनाजन्य स्थिति रही है। इसलिए कवि को कहना पडता है।

मुझे कहाँ पता था
कि मेरे रास्ते इतना अंधेरा इतनी चट्टाने आ जाएंगी?
मैं भटक गया
और मुझे रास्ता नहीं मिला
आकाश भले दयालु हो, दिशा नहीं दिखाता।[1]

मनुष्य के चारों ओर, अन्दर और बाहर भीषण रूप से व्याप्त अंधेरे में भीतर की आज्ञता रूपी अंधेरा बाहर की अंधता के बढ़ने का कारण बन जाता है। परिवेश के दबाव में विवेक, बुद्धि के न होने से मानव अपने को नष्ट-भ्रष्ट कर रहा है। ज़रा सा थमकर या रुककर सोचने के लिए उसे वक्त नहीं है। परिणाम यह है कि तेज़ गति में वह अपने को खो रहा है। 'पथहारे का वक्तव्य' शीर्षक कविता में कवि कहते हैं -

सब कुछ गँवा देने के बाद भी जो कुछ बचा रहता है।
मैं उसका कवि हूँ
सूखी नदी की बालू में बहुत नीचे चली गयी नमी
आँसुओं से धूँधला गया न सुना जा सका शब्द
पतझरे ठँठ वृक्ष में धीरे-धीरे सिर उठाती हरी अँकुआहट[2]

---

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपेयी - पृ. 126, प्र. सं. 2002
2. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपयी - पृ. 18, प्र. सं. 2004

निराशा और आवसाद के घेरे में बंधे मनुष्य को ये कविताएं ढाढस बंधा सकती है। चारों ओर फैली हुई भीषणताओं हमलों से भयभीत मनुष्य यदि ज़रा सुस्ताने के लिए बैठता है तो कविता उसके लिए जगह बनाती है।

मनुष्य के बिंब को सरल ढंग से 'कुम्हार' शीर्षक कविता में प्रस्तुत किया गया है।

मैं तो अपने काम में लगा हूँ
और किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूँ।
कीचड से उबरे हुए लोग जब आएँगे
तो उनके लिए घड़ों में पानी और बर्तनों में गुड होगा
और मैं या मेरा बेटा या मेरा पोता या कोई ओर
चके पर समय को / मिट्टी को,
सपनों और यादों कों
कोई न कोई आकार दे रहा होगा।[1]

हाशिये पर फेंके जाने पर भी समय के तीक्ष्ण परायेपन के बाद भी वह हमेशा मिट्टी के साथ रहना चाहता है। अपने धंधे की पवित्रता को बनाये रखने का आग्रह भी उसमें प्रबल है। मछुआरे अपनी विवशता एवं कमज़ोरी को कभी भूलता नहीं। मछुआरे यह भली भाँती जानते हैं कि जाल में कोई न कोई सच अवश्य फँसेगा। लेकिन कौन कब यह मालूम नहीं है। जाल के भार बढने पर और उसमें चाँदी का

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 16, प्र. सं. 2000

रंग चमकने पर मछुआरे की आँखें भी उसी प्रकार चमकती है बिना यह जाने कि कौन-कौन भी सुन्दर चीज़ इस जाल में फँस गयी हो। नाव में यों ही अनमना बैठते समय वह सोचता है कि हम मरने के लिए नहीं जीते हैं वैसे ही ये मछलियाँ भी हमारे खाने के लिए पैदा नहीं होती। पानी का सच, जाल का सच, नाव का सच, मछलियों का सच सब एक दूसरे के खिलाफ क्यों हो जाता है? कवि शंकाग्रस्त हैं।

और सवाल हर समय सिर्फ इतना-सा है कि कौन
किसको पहले फँसाता और खाता है
मैं तो सिर्फ मछलियाँ पकड़ना जानता हूँ
पर अगर किसी जाल में से फँस जाऊँ
तो अपनी इन असहाय मछलियों की ही तरह
मुझे कहाँ पता है उससे बाहर आने की तरकीब?[1]

दुनिया रूपी जाल में फँसकर मरने वाले सामान्य औसत लोगों के यथार्थ के प्रति कवि की यह आकांक्षा ध्यान देने योग्य है क्योंकि उत्तराधुनिक दौर में आकर मनुष्य का जीवन संकट ग्रस्त हो गया है। उन्हें नियति, धर्म, और राजनीति के विनाशकारी झंझट में फँसकर मरना ही है। कबाड़ी का वक्तव्य है -

क्या समय को पता है कि
उसके आइनाखाने में कहाँ-क्या सजा है?
इतिहास को खबर है कि उसकी सीमाओं में क्या-कहाँ
अँटा पडा है?

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 24, प्र. सं. 2000

मुझे ठीक-ठीक पता है कि
मेरे कबाड़खाने में कहाँ रखी है आज़ादी,
असल में यह सदी आदमी के इतिहास में
खुद एक कबाडखाना है।[1]

कबाडी का सवाल समाप्त नहीं है। इसमें इतनी गहराई है कि मनुष्य की प्रतिलिपि का गहराता रूप प्राप्त होता ही है। उसे अपने सच का पता भी है। यह सच इतना विकराल है जिसे हमें इतिहास में संदर्भ में परखना होगा।

कड़कती या मुलायम आवाज़ में
मुझे अपनी तुच्छता का लगातार अहसास कराता हुआ
यह समय बताता है कि
एक और जंजीर तैयार है हम जैसों केलिए[2]

हर क्षण मनुष्य गुलामी की जंजीरों से मुक्त होने के लिए कमरतोड मेहनत कर रहा है। लेकिन आत्मा का अंधेरा और फैल रहा है जहाँ सच के पक्ष में खडे होने या सच का पल्ला पकडने केलिए उसे समय नहीं मिलता है। सच के पक्षधर होने का अनुकूल समय भी नहीं है।

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 26, प्र. सं. 2000
2. कहीं नहीं वहीं (तिनका तिनका-भाग-2) अशोक वाजपेयी - पृ. 91, प्र. सं. 1991

अशोक वाजपेयी की कविता की समाजाकि संसक्ति दरअसल समकालीन कविता में सामान्यतः व्यंजित संसक्ति से भिन्न नहीं है। लेकिन वे इस कविता-वस्तु को कविता की शर्त पर तपाता है। मनुष्य की व्यथा से, उसके संघर्ष से तथा उसकी मुक्ति कामना से संबंधित ऐसी कविताएँ निरंतर पाठकीय चेतना को विचलती करती रहती हैं।

.....🕮.....

# अध्याय 4

## अशोक वाजपेयी की कविता में मृत्युबोध और उसका समकालीन सन्दर्भ

## आधुनिक साहित्य में मृत्युबोध की परिकल्पना

जिसे हम आधुनिक युग कहकर अभिहित करते हैं उस में मृत्यु की चर्चा सबसे अधिक अस्तित्ववादी साहित्य में हुई। इसका तात्पर्य है कि मृत्यु की चर्चा साहित्य में पश्चिम की देन है। अस्तित्ववाद ने भारतीय साहित्य को प्रभावित किया। हिन्दी साहित्य भी उससे अछूता नहीं रहा। अस्तित्ववाद के विपक्ष में खडे होकर हिन्दी में अज्ञेय ने अपना उपन्यास - 'अपने-अपने अजनबी' प्रस्तुत किया। फिर भी वह अस्तित्ववादी दर्शन से मुक्त नहीं है। सन सत्तर-पचहत्तर तक आते अस्तित्ववादी कोहरा हिन्दी साहित्य में से छन जाता है। समकालीन दौर में अशोक वाजपेयी ने इस विषय को लिया। लेकिन उनके लिए यह मात्र विषय नहीं है। अशोक-वाजपेयी की विशेषता यही है कि वह अपने अनुभवों को शब्द दे रहे हैं।

## अशोक वाजपेयी में मृत्युबोध का उत्स और विस्तार

अशोक वाजपेयी की कविताओं में मानव जीवन के बहुआयामी पक्षों का अति सूक्ष्म अंकन हुआ है। उनकी कविताएँ एक संवेदनशील व्यक्ति द्वारा प्रकृति को अनुभव करने का पाठ हैं। प्रकृति इन कविताओं में इस प्रकार घुल मिल गयी है जिसप्रकार पानी में चाँद घुल मिल गया हो। प्राकृतिक विन्यास का स्वाभाविक

अंकन प्राकृतिक उपादानों में सीमित नहीं है। ये प्राकृतिक उपादान जीवन के साथ पूर्णतः जुड गये हैं और मनुष्य के जीवन को प्रकृति में समाहित करते है। प्रकृति की रहस्यमयता का तब जीवन में सन्निवेश असंदिग्ध है। युगों से मनुष्य उसी रहस्य की तलाश में है जिसके लिए अब तक कोई सही उत्तर या निष्कर्ष नहीं निकाल पाया है। समय-समय पर अनेक दार्शनिकों ने संसार के रहस्यात्मक उलझन को सुलझाने का प्रयास किया है। वे जीवन, ईश्वर और प्रकृति के बारे में अपना-अपना दार्शनिक मंतव्य व्यक्त करते हैं। कवि एवं चिंतक के रूप में जीवन से जुडी हुई चिरन्तन समस्याओं के प्रति अशोक वाजपेयी भी जागरूक बनते हैं। जीवन के अनेकायामी पक्षों का अपने अनुसार उद्‌घाटन करनेवाले अशोक वाजपेयी की बहुत सारी कविताएँ मृत्युसंबंधी हैं। मृत्युसंबंधी इन कविताओं में अशोक वाजपेयी अपना एक पारदर्शी दृष्टिकोण व्यक्त करते हैं।

अशोक वाजपेयी मूलतः घर, परिवार, और आस-पडोस के कवि हैं। मध्यप्रदेश के सागर शहर में गोपालगंज मुहल्ले में उनका बचपन बीता था। बाल्यावस्था में ही यह पडोस उनमें गहरे पैठ गये थे। अर्थात बचपन में उनके प्रभाव का भूगोल तय करने में इस मुहल्ले का बहुत बड़ा योगदान है। घर, नाना-नानी के घर, सड़क की आवाजाही, वहाँ की आबोहवा ये सबकुछ उनमें एक तरह से अपदस्थ हो गया लगता है। अशोक वाजपेयी ने इसे कई सन्दर्भ में स्वीकार किया

है और उनकी अब तक प्रकाशित सभी कविताएँ इसका सबूत स्थापित होती हैं। उनका ही कथन है - 'गोपालगंज मेरे जीवन का पहला और दुर्भाग्य से अंतिम पड़ोस था।[1] जीवन के अत्यंत निकट उपस्थित होने के कारण उनकी रचनाओं में घर की तलाश बहुल मात्रा में पायी जाती है। बाद के सक्रिय जीवन में उनका संवेदनात्मक स्तर चाहे कितना भी फैल क्यों न गया हो फिर भी मूल में यह घर की तलाश और आत्मीय संवेदनाओं की चाह तीव्र है। कवि में बचपन के इस घर और परिवार को न बचा पाने का दुःख प्रबल है। उनकी कविता में स्थायी भाव सा जिस अवसाद ने घेर लिया है इस पड़ोस को न बचा पाने के कारण उत्पन्न हुआ है।

गोपालगंज मुहल्ले ने कई अर्थों में अशोक वाजपेयी पर प्रभाव डाला है। पहले यह घर और उसकी आत्मीयता है तो बाद में आत्मीय जनों की मृत्यु है। जब अशोक बाजपेयी बहुत छोटा था तब ताऊ आनन्द मोहन वाजपेयी, जो सागर विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर थे, कई बार बाल साहित्य लाकर देते थे। वाचन की ओर बालक अशोक की रुचि बढाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था। एक दिन ससुराल में पेट में दर्द की वजह से उनकी मृत्यु हो गयी। अशोक ने उन्हें अंतिम बार जीवित ही देखा था। बालक अशोक वाजपेयी की याद में घर परिवार में यह पहली मृत्यु थी।

1. जो नहीं है - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र सं. 1996

सागर के गोपालगंज मुहल्ले में दो बार हैजे और प्लेग का प्रकोप हुआ था। दोनों बार अशोक वाजपेयी बीमार पडा था और एक बार हैजे की हालत इतनी बिगड़ी कि उसे मृतप्राय समझकर ज़मीन पर लिटाया गया था। लेकिन मृत्यु के मुँह से वह लौट आया। एक किराये के मकान में उसका बचपन गुज़रा था। मरघट उस घर के निकट ही था। घर और नाना-नानी के घर के सामने से बीच-बीच में एकाध शवयात्रा निकलती थी। एक बार अशोक वाजपेयी की एक छोटी बहिन, जो कुछ ही महीनों की थी, अंत्योष्टि के लिए उस नन्हें से शव को मरघट ले जाकर दफनाया था उस शिशु के लिए कई दिनों तक माँ का विलाप बालक अशोक वाजपेयी की स्मृतियों में मंडराता रहा।

बचपन और लड़कपन में जिस सचाई से निरंतर सामना हो रहा था उससे मुँह मोड़ना एक रचनाशील कवि केलिए संभव नहीं है। अशोक वाजपेयी के काव्यलोक को गंभीर एवं गहन बनाने में इन हादसों का स्थान उल्लेखनीय है। गोपालगंज मुहल्ले में सबकुछ आस-पास था। सभी एक दूसरे के बगल में, सभी कुछ परस्पर छूता हुआ सा। जीवन और मृत्यु भी। दोनों का एक अटूट सा सिलसिला था जैसे सड़क पर जाती भीड कभी दिऩ में थमती नहीं थी, वैसे ही जीवन मृत्यु भी।[1] अशोक वाजपेयी के रचनात्मक संसार को सृजनशील बनाने में इस

1. जो नहीं है - अशोक वाजपेयी : भूमिका - प्र. स. 1996

परिवेश का स्थान महत्वपूर्ण है। एक साथ मृत्यु का अवसाद और जीने की अदम्य लालसा उनकी कविताओं में द्रष्टव्य है।

आस पड़ोस से एक-एक व्यक्ति ओझल हो रहा है फिर भी हममें जीने की उत्कट इच्छा और आकांक्षा शेष रहती हैं। मृत्यु के बाद भी जीवन बाकी रह जाता है। हर क्षण जीने से मतलब मरना है। हर क्षण बीतता रहता है। यह बीतना ओझल हो जाना है। बीते हुए क्षण कभी वापस नहीं आता है। लेकिन स्मृतियों एवं इनकी अन्तर्ध्वनियों में प्रत्येक क्षण का सच उजागर रहता है। प्रतिक्षण अपने को नष्ट करते रहनेवाला मनुष्य एक न एक दिन आकर पूर्णतः अपने को अनंत के पड़ोस में छोड देता है या लुप्त हो जाता है। मनुष्य का इस प्रकार लुप्त हो जाना आजकल एक मुख्य बात नहीं है। लेकिन मृत्यु एक शाश्वत् सत्य है, चिरन्तन समस्या है। इस रहस्यात्मक समस्या का हल या इसके मतलब की खोज प्रत्येक युग में दार्शनिक करते रहे हैं। लेकिन जीवन-मृत्यु का आर-पार अब भी रहस्यमय बन पड़ा है। समकालीन दौर में आकर अन्य कई संकटों के बढ़ने के कारण मनुष्य का यह चरम प्रश्न लगभग भूल सा गया है। इस शताब्दी ने हमें सामाजिक समय से इतना आक्रांत किया है कि हम यह भूल-से गये हैं कि मृत्यु भी समय का पक्ष है। उससे कविता में जूझना समय से ही जूझना है। उससे दो-चार होना मनुष्य की नियति से दो-चार होना है। यह समय के कालातीत आयाम से संपृक्त होना है। वह कविता के अत्यन्त

प्राचीन समाज में शामिल होना है। वह अपने निजी अन्त को दयनीय बनाने के बजाय उसे अर्थ और गरिमा देने का जतन करना है। क्योंकि मृत्यु से मनुष्य का चिरंतन सरोकार है और चूँकि कविता मनुष्य के बुनियादी सरोकारों को हर समय में खोजती-सहेजती है। जहाँ महान चिन्तकों ने मृत्यु संबंधी अपना दार्शनिक विचार प्रस्तुत किया है वहाँ अशोक वाजपेयी की कविता में मृत्यु या जीवन में ईश्वर की अनुपस्थिति कोई दार्शनिक प्रत्यय न होकर उपस्थित है। वह नश्वरता की ठोस सचाई का अधिग्रहण करते हुए अनश्वरता का सपना देखनेवाली कविता है। अपने गहरे अवसाद के बावजूद वह जीने से विरत नहीं करती। अर्थात ये कविताएँ जीवन से विरक्ति की नहीं अनुरक्ति की कविताएँ हैं।

अशोक वाजपेयी के निकट के लोगों में प्रत्येक व्यक्ति ने उनके वैयक्तिक जीवन में प्रभाव डाला है। अपने आस पड़ोस की जीवन्त स्थिति को मौन होकर ताकने और अनुभव करने के कारण ये सभी उपस्थितियाँ उनके जीवन की ही निकट उपस्थितियाँ बन गयी थीं। उनमें बच्चे थे, बूढे भी। उन बूढे जनों के अकेलेपन को उसकी गहराई में अशोक वाजपेयी ने अनुभव किया था और उन लोगों का निधन अशोक वाजपेयी में अवसाद भर देता है। यह अवसाद अकेलेपन का परिणाम है। लेकिन उन आत्मीय जनों की अनुपस्थिति के बीच भी स्मृतियों एवं अन्तर्ध्वनियों के रूप में वे लोग उपस्थित भी थे। अशोक वाजपेयी के ताऊ जिन्हें सब बाबा कहते

थे राजापुर गढेवा से आकर इस घर में रहने लगे थे। सफेद दाढीवाले बाबा हमेशा उस घर के सामने वाले परछी में मंत्र बुदबुदाते हुए शांत बैठते थे। "अपने गाँव-घर से दूर अपने पुराने पड़ोस विच्छिन्न और गोपालगंज में अपने हम उम्र खोजने में अशक्त बाबा एक अनिवार्य घरेलू उपस्थिति थे पर उनके जीवन का कितना सारा उनके बुढापे में अनुपस्थित था। उन्हें कोई जल्दी नहीं थी पर मृत्यु ही कुछ जल्दी कर रही थी।[1] इस बाबा की शांत उपस्थिति मृत्यु के बाद भी अशोक वाजपेयी अनुभव कर रहे हैं। लेकिन मृत्यु की अनिवार्यता पर विश्वास गहरा हो रहा है साथ ही जिजीविषा भी। "नश्वरता मनुष्य का एक चिरंतन प्रश्न है। कविता उस नश्वरता के विरुद्ध एक असमाप्य संघर्ष है और उसकी अनिवार्यता का सहज स्वीकार भी। हम कविता लिखते हैं क्योंकि हम जीना चाहते हैं, मरना नहीं। अन्तर्विरोध यह है कि हर कविता एक तरह का अवसान है। वह जीने के साथ ही मरने को भी खुली आँखों देखना पहचानना है। असल में वही जीता है जो मरते हुए जीता है कविता एक तरह से मरते हुए जीना है, बीतते हुए खिलना है। वह जीवन नहीं, अति जीवन है।[2] मरने के बाद भी कविता जीवन को बचाती रहती है। कविता बीतने का असमाप्य संगीत है। इस संगीत में अवसाद है, लेकिन जीने की उम्मीद के साथ।

---

1. जो नहीं है - अशोक वाजपेयी - पृ. 11, प्र. सं. 1996
2. वही - पृ. 13, प्र. सं. 1996

जब अशोक वाजपेयी सात-आठ बरस का ही था महात्मागाँधी की हत्या हुई थी। सारे मुहल्ले में ऐसा शोक छा गया था कि एक सार्वजनिक क्षति हरेक की निजी क्षति बन गयी थी। एक एक के मरने के साथ हमारा भी कुछ मर जाता है। जीवन का सुन्दर पक्ष कुछ नष्ट हो जाता है। भारतेतिहास में गाँधिजी की हत्या मानवीयता की हत्या थी। यह मनुष्य से मनुष्यत्व खोते जाने का स्पष्ट प्रमाण था।

मुक्तिबोध का निधन जब हुआ था तब तक अशोक वाजपेयी ने किसी को सचमुच मरते हुए नहीं देखा था। मुक्तिबोध महीनों से अचेत लगभग जीवन्मृत थे। अशोक वाजपेयी ने उनके सिरहाने अपराजिता के फूल रखे थे। उनकी साँस, उल्टी साँस, असपताल के कमरे में दुधिया सी रोशनी में धीरे-धीरे कम होती गयी और फिर एकायक रुक गयी। वे उस समय बेहद कृशकाय थे। मुक्तिबोध के साथ व्यक्तिगत संबंध रखने के कारण यह मृत्यु अशोक वाजपेयी के लिए सहनीय नहीं थी। हर तरह से यह अवसान दुर्भाग्य पूर्ण था। लेकिन उसमें कुछ था जो सुन्दर था। उसी प्रकार अशोक वाजपेयी के पिता को केंसर था। जिन्हें वे काका पुकारते थे। पिता कर्कश स्वभाव के आदमी थे और विश्वविद्यालय में प्रशासक थे। बालक अशोक वाजपेयी के साथ हमेशा एक दूरी कायम रखे थे। जिनकी चिता पहली चिता थी जिसमें उन्होंने घर में पहली संतान होने के नाते अग्नि दी थी। जीवन भर उनसे डरने के कारण पिता की मृत्यु से एक विचित्र और लगभग राहत सी मिली थी। जीते जी उनके आतंक से वह कभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया था।

अशोक वाजपेयी के जीवन में मृत्यु का यह सिलसिला टूटता नहीं। एक एक परिचित का बीच में से ओझल हो जाना अशोक वाजपेयी में फिर कविता के जन्म के लिए कारण बन जाता है। दिदिया, नाना, छोटे भाई उदयन की पत्नी, अज्ञेय, कवि मित्र सोमदत्त, कुमार गन्धर्व, श्रीकांत वर्मा, रघुवीर सहाय, शमशेर बहादूर सिंह, सहकर्मी चित्रकार जगदीश स्वामिनाथन, मल्लिकार्जुन मंसूर आदि निकटतम व्यक्तियों का लुप्त होना अशोक वाजपेयी के लिए मर्मान्तक घटना थी। जीवन के सबसे उल्लास और उपलब्धि के क्षण में मृत्यु इतने पास आकर सबकी व्यर्थता का नहीं बल्कि उससे प्रकट अदम्य जिजीविषा का सत्यापन कर चली जाती है। अर्थात् मरना जीवन रूपी सत्य को उजागर करता है अशोक वाजपेयी के भीतर ऐसा विचार बल पकड़ता है। मृत्यु के अगले क्षण से लेकर हम व्यस्तता में लग जाते हैं। अशोक वाजपेयी खुद यह कहते है कि 'जीने में एक तरह की निर्लजता है। हमारा कोई अत्यंत अन्तरंग मर जाता है। फिर भी हम जीते रहते हैं। मृत्यु जैसे झकझोर देनेवाले हादसे के बाद भी जीने की रोज़मर्रा की झंझट बनी रहती है - प्यास लगती है, भूख भी। गर्मी लगती है और जगह बदलकर बैठने की इच्छा भी होती है।[1] मृत्यु उत्पन्न करने वाली शून्यता और अकेलेपन को एकाएक भूलकर जीने की उत्कट आकांक्षा कवि के लिए हमेशा आश्चर्य की बात है।

---

1. जो नहीं है - अशोक वाजपेयी - पृ. 12, प्र. सं. 1996

## मृत्युबोध का दार्शनिक पक्ष

अशोक वाजपेयी की कविताओं के सन्दर्भ में यह तथ्य सुस्पष्ट है कि उनकी मृत्यु संबंधी कविताओं में अस्तित्ववाद का प्रभाव नहीं है। उनका मृत्यु को देखने, परखने, और अनुभव करने की रीति भिन्न है। अनंत की याद दिलाते हुए जीवन का समापन अशोक वाजपेयी में उम्मीद जगाने लायक है। व्यक्ति जनों की मृत्यु से चिंतित - कवि उन लोगों की अनुपस्थिति के बीच में भी उपस्थिति का बखान करते हैं। यह अनुपस्थिति-उपस्थिति की बात अनंत के पडोस तक जाने की बात अशोक वाजपेयी की कविताओं का अपना दर्शन है। अपने ही जीवन में ईश्वर की उपस्थिति और अनुपस्थिति का एहसास उन्हें बीच में संघर्ष में डाले रहा है। एक प्रकार का द्वन्द्व उन्हें घेर लेता है। इसलिए उनकी मृत्यु और अनुपस्थिति की कविताएं एक साथ रखकर पठनीय है। दरअसल अशोक वाजपेयी की कविताओं का वस्तुजगत् मानव केन्द्रित है। मनुष्य होने के नाते उसकी बुनियादी समस्याओं से ही उनकी कविताओं का मूल सरोकार है। वे एक दूसरे से अविच्छिन्न हैं। रिश्तों की आत्मीयता पर विश्वास करनेवाले कवि अवश्य ही घर, परिवार, और आस पडोस के कवि हैं। क्योंकि उस घर में वह मनुष्यत्व का कोमल स्पर्श पाते है जो बाह्य जगत् में नष्ट भ्रष्ट हो गया है। इसलिए एक प्रकार से ये कविताएँ बाह्य यंत्रणा के

खिलाफ बुलन्द होनेवाला आन्तरिक विद्रोह लगती है। यह मनुष्य-मन के अन्तर्जगत की ओर निरन्तर विचरण करने का परिणाम है।

मानवीय संबंधों की अन्तरंग अनुभूति पर विश्वास रखनेवाले कवि के लिए रिश्तों का कोमल स्पर्श एन्द्रियता से ऊपर उठकर आध्यात्मिक स्तर तक पहूँचना है। तद्स्थिति में अचानक उनमें से एक अंतरंग व्यक्ति का कहीं ओझल हो जाना पुनः उन्हें संघर्ष में डाल रहे हैं। अवसान जिजीविषा को ज़रूर पक्का करता है। उनकी कविताओं को तराशने पर यह पृथ्वी, आकाश, जीवन-मृत्यु, आदि-अनंत के बीच का सनातन द्वन्द्व नयी शब्दभंगिमा के साथ संवेदनीय बन जाते हैं। व्यक्तित्व की स्वाधीनता की भीतरी चाह एवं उत्मुक्त होकर जीने की आदम्य लालसा उन्हें अस्तित्ववादियों के विचारों से जोडती है। लेकिन अशोक वाजपेयी को अस्तित्ववादी कहना ओर उनका दर्शन अस्तित्ववादी दर्शन कहना गलत अध्ययन होगा।

## मृत्युबोध की कवितात्मक अभिव्यक्ति

अशोक वाजपेयी के अबतक प्रकाशित 11 काव्यसंग्रहों में प्रकारांतर से सभी में मृत्युविषयक कविताएँ उपलब्ध हैं। 'शहर अब भी संभावना है' जो 1966 में प्रकाशित है, से लेकर ऐसी कविताएँ मिलती हैं। उनके अपने परिवेश में मृत्यु-अवसान का जो सान्निध्य रहा था जिसको वे स्वीकार करते हैं। उनकी मानना है - "शायद कविता अपनी आत्मा का भूगोल काफी शुरू में ही तय कर लेती है। मैं

जिस परिवार-मुहल्ले में पला-बढा, जिस तरह के लोग और संबंधों का गुँथाव मैं ने वहाँ जाना उसी सबने मिलकर लगभग अटल और स्थायी रूप से मेरे मन में एक पड़ोस बसा दिया। बाल्कि पड़ोस की धारणा मेरे कविता संसार का बुनियादी भूगोल ही बन गई। मुझे लगता है कि वही सच है जो पड़ोस में है मनुष्य के पास प्रकृति, प्रकृति के पास भाषा, भाषा के पास प्रेम, प्रेम के पास मृत्यु, समय के पास अनन्त, पृथ्वी के पास आकाश, आदि।[1] गोपालगंज मुहल्ला जो उनका पहला और अंतिम पडोस था। वहाँ से उन्होंने जो कुछ भीतर समाया उसे कभी नहीं छोडा। परिवार, और दुनिया का दायरा विशाल होता गया लेकिन मूल संसक्ति में कोई बदलाव नहीं आया। छोटे सच को भी खराब न होने से बचाने के परिश्रमी कवि ने अपने काव्यसंसार को पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज को सही स्थापित किया है।

अपने छोटे जीवन और इस जन्म से प्यार करने वाले कवि मृत्यु से दूर रहना चाहते हैं। लेकिन यह एक अनिवार्य सचाई है। हरेक मनुष्य मृत्यु के घाट उतारा जाता है। अंधेरी सूनी गलियारों में पवित्र प्रकाश की तरह मृत्यु टिमटिमाती है। मृत्यु का पवित्र प्रकाश की तरह चमकना अनंत की याद दिलाती है। जीने की लालसा मरने पर भी थमती नहीं। इसलिए मानव हमेशा यह प्रयास करता है कि अपने इस दुनिया में जीवित रहने की झाँकी बाकी रहे। इस दुनिया में सारी आशा

---

1. तिनका तिनका-भाग-1 - अशोक वाजपेयी - पृ. 9, प्र. सं. 1996

आकांक्षा सुख-दुःख में जीवित रहे। आगे यहाँ से जाने को मन नहीं करता है। उस पार भी कवि वही जीवन चाहता है -

मौन के आभामय आकाश में
यों ही रहो, प्यार से पीडित
अपनी कामना से ज्वलंत
और मुझे टूटी हुई सीढ़ियों
छपरहीन मकानों
और सड़े हुए पेड़ों में से
अपनी घृणा से गुज़रने दो....[1]

ढेर सारी संघर्षपूर्ण परिस्थितियों से गुज़रने पर भी कवि इसी मटमैले संसार को पसन्द करते हैं। इस जीवन को बचा पाने की इच्छा उनमें सजीव है। 'मुझे घृणा करने दो' शीर्षक इस कविता में मृत्यु जैसे सच की सहज स्वीकृति है साथ ही जीवन का कुछ न कुछ बाकी रखने का आग्रह भी।

जिस सागर शहर में उनका पालन पोषण हुआ था वह किराये का मकान था। बाद में किसी कारण वश उसे छोड़ना पड़ा था। महीनों के बाद एक बार कवि अपने किराये के मकान के सामने से गुज़रते हैं। वहाँ सबकुछ बदल गया था। लोग एक के बाद एक आ-जा चुके हैं। कोई उन्हें जानता नहीं था लेकिन कवि उधर अपने

---

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 67, प्र. सं. 1997

घर की जीवन्त उपस्थिति महसूस करते हैं। कई दिन, महीने बीत चुके है। बीतने का मतलब कुछ न कुछ मरना है। वहाँ चारों ओर के दृश्य बदल गये हैं। दृश्य और लोगों के बदलने पर भी कवि विश्वास करते हैं कि हमारे इधर रहने की याद ये दीवारे, खिडकी, पेड-पौधे, चिड़िया सबको होगी। गुजरे क्षणों के अवसाद में भी कवि उम्मीद कायम रखते हैं -

परछी में धूप खाते हुए
बुढापे से लगभग अंधे बाबा के सामने
आकर फुदकने लगती है एक चिडिया
बाबा गश खाकर गिर जाते हैं[1]

माँ, पिता, बाबा आदि की स्मृतियाँ, अन्तर्ध्वनियाँ घर में हमेशा रहती हैं। चाहे समय कितना बदल गया हो परिवेश कितना त्रासदायक हो प्रकृति में इसकी छवि तो बाकी रहेगी। मृत्यु के बाद भी सब कुछ बचा रहता है। स्मृतियों के रूप में या अन्तर्ध्वनियों के रूप में, अपने दूसरे काव्य संग्रह में आकर कवि का अनुभव और प्रकट हो जाता है। प्रथम संग्रह में संकलित कविताओं से सालों के बाद रची गयी इन कविताओं में अनंत के पास अपने पतंग को छोड आनेवाले बच्चे का बिंब दिखायी देता है। जिससे स्पष्ट होता है कि कवि की संवेदना अनंत को छू रही है। इसी दौरान असंख्य अंतरंग जनों की मृत्यु हुई थी। जिनमें माँ भी है। प्रथम संग्रह में जो माँ आसन्न प्रंसवा

1. शहर अब भी संभावना है (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 109, प्र. सं. 1966

थी वह दूसरे संग्रह में आकर दिवंगता है। पिता की तुलना में अशोक वाजपेयी में माँ का प्रभाव गहरा है। वह बुन्देलखण्ड की थी। रोज़ रामचरितमानस की पूजा करनेवाली शांत स्वभाव की माँ घर में एक निश्शब्द उपस्थिति थी। माँ की पहली संतान होने के कारण लाड-प्यार तो ज़्यादा उन्हें मिला था। साथ ही अपने छोटे भाई-बहनों और अन्य परिवार जनों के साथ उनकी करुणा एवं प्रेम का भाव अशोक वाजपेयी की कविता के लिए आश्रय बन गया। 'अमर मेरी काया' नाम से इसमें एक कविता श्रृंखला ही है। माँ के मरने के एक साल बाद लिखी गयी 'इन्हीं दिनों' शीर्षक कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। मरने के पहले के दिनों में माँ, अपने घर - परिवार को छोड जाने की पीड़ा के बीच भी, आखिर जाने की तैयारी शुरू करती है। जीवन भर की व्यस्तता एवं व्याकुलता से ईश्वर उसे कुतरने के बावजूद इन्ही दिनों उसे ले जाने की उत्सुक प्रतीक्षा में है। इन्हीं दिनों पिता ने वैतरणी में नहाकर लोटने के बाद उसे खाना परोसने के लिए आवाज़ दी होगी। पति की आवाज सुनकर माँ जल्दी-जल्दी उस ओर चली गयी होगी -

इन्हीं दिनों
उसने हिम्मत कर
एक बार उठकर
हवा से हवा, आकाश से आकाश, मिट्टी से मिट्टी
अलग कर
अपनी पैतृक हड्डियों को फेंकने का तय किया होगा

उस कुत्ते की ओर
जो ज़िन्दगी की तरह उम्मीद से
और मौन की तरह चालाक लालच से
उसकी ओर देखता रहा था।[1]

मृत्यु अपने आपमें कितना संशयहीन, एवं प्रश्नहीन तथ्य है। कैसा अनोखा, अप्रत्याशित आश्चर्य है। मृत्यु के अनुभव से जुडी यह कविता मृत्यु का सहज स्वीकार भी है। इस चिरन्तन सचाई को लेकर असंख्य संदेह, कवि मन को सता रहे हैं। मृत्यु की रहस्यात्मकता से जुड़े हुआ यह सन्देह कवि का निजी संघर्ष होने के साथ ही साथ सार्वजनिक भी है। धार्मिक आस्था रखनेवाली माँ अपनी अपनी आस्था को दूसरों पर थोपने की दिलचस्पी नहीं रखती थी। ऐसी माँ के मरने से उस बेटे को ऐसा लगा कि "मेरे भीतर भी कुछ मर गया। मैं बहुत हद तक उनका बेटा था। जब माँ मरती है तो बेटे का भी कुछ न कुछ मर जाता है। मुझे पता नहीं कि मरते समय उसने किसे याद किया था।" माँ विषयक लिखी गयी कविताओं में अनुभव की जड़ों, स्मृति रूपों, स्मृति और वर्तमान के तनाव की समझ के साथ खुलते भाषा के रहस्यों और सीमाओं की ओर ज़रूर ही ध्यान जायेगा। सुदूर और निकट के अनेक रूपों, रिश्तों, अनुभवों के बीच अशोक वाजपयी की कविता विश्वसनीयता प्राप्त करती है। इन्हीं माँ, पिता विषयक कविताओं में, इन्हीं स्मृतियों में जहाँ राजापुर

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग -1) अशोक वाजपेयी - पृ. 120, प्र. सं. 1984

गढ़ेवा का पैतृक गाँव ढहने-ढहने को है, जहाँ 44 गापोलगंज सागर वाले मकान में कविता शुरु हो रही है, प्रेम शुरू हो रहा है। सुदूर से सुदूर तक की यात्रा हमेशा थका देनेवाली होगी। अशोक वाजपेयी की कविता विश्वसनीयता प्राप्त करती है, इसी तात्कालिक या उद्दाम के निकट जाकर। तनाव ओर उद्विग्नता के निकट जाकर। अशांत और अनिश्चित के निकट जाकर।[1] 'मौत की ट्रेन में दिदिया', 'उमर मेरी काया', 'स्वर्ग में नरक', 'पिता के जूते', 'दिवंगत बहन' आदि कविताओं की इस श्रृंखला में संबंधों के निजीपन के साथ मृत्यु का तनाव है, जीने की उत्कट आकांक्षा भी। मौत की ट्रेन में यात्रा करनेवाली माँ के बारे में उनकी चिंता कहीं रुकती नहीं। मौत रूपी ट्रेन के बरामदे में खडे लोग बाहर की ओर देखते हैं जहाँ से वे गये थे। न कोई जल्दी है और न कहीं अन्दर बैठ जाने का उम्मीद -

बिना उम्मीद के इस सफर में
दिदिया भी कहीं होगी दुबकी बेठी
या ऐसे ही कोनों में कहीं खड़ी
और पता नहीं उसने काका की खोज की भी या नहीं
दोनों अब इसी ट्रेन में है जो बिना कहीं रुके
न जाने किस ओर चली जा रही है कहराती हुई
कहीं सौट पर
बरसों पहले आई कुछ महीनों की बहन भी है

---

1. कविता का अर्थात् - परमानन्द श्रीवास्ताव - पृ. 181, प्र सं. 1999

जिसका चेहरा भी याद नहीं
और बड़ी सफेद दाढीवाले मन्त्र बुदबुदाते बाबा भी
सब मौत के ट्रेन में चले गये। लेकिन
वे एक दूसरे को पहचानते नहीं होंगे। बेखबर
बेसामान होकर दस्तक मिलते ही चली गई
जीवन को अपूर्ण छोड़कर।
उसने दस्तक होने पर
दरवाज़ा खोला
और रामायण के पाठ को बीच में ही छोड़कर
चली गई। जैसे बच्चों के लिए दूध गरम करने[1]

मृत्यु की आकस्मिकता एवं अनिवार्यता निस्संन्देह है। लेकिन उस जीवन के सच तो बचे रहेंगे। अनुपस्थिति में भी उपस्थित होने का अचरज कवि स्वयं अनुभव करते हैं। माँ की करुणा कलित मूर्ति कभी ढहती नहीं। वह हमेशा बनी रहती है। 'स्वर्ग में नरक' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है -

अभी भी स्वर्ग के ऐश्वर्य के आतंक को वह सहती होगी
रामचरित मानस के पाठ से
लेकिन हमारा
उसके आस-पास न होना
क्या उसके लिए नरक नहीं होगा?[2]

1. एक पतंग आनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 121, प्र. सं. 1984
2. वही - पृ. 124, प्र. सं. 1984

असल में अशोक वाजपयी की कविताओं का लोक बहुत विस्तृत है। वहाँ जीवन के गहन भावों के सघन मर्मों की पहचान मिलती है। उनकी कविताओं की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि अपनी आकांक्षा, स्मृति और बार-बार उम्र के फासले को पारकर अतीत के उस जीवन में लौटना, जहाँ की रम्यता वर्तमान की कठोरता को अपदस्थ करने की शक्ति देती है। इस अंधेरे समय में अपने को पाने की कोशिश और संबंधों की ताकतवर असीसों ने पूर्वजों को लौटा लाने की यही अदम्यता, कवि की निजता को सुरक्षित रखने का एक सार्थक उपक्रम है। 'पिता के जूते शीर्षक कविता में मानवेतर प्राणियों और वस्तुओं के सहभाव से ऐसी स्थिति निर्मित करती है जहाँ पिता का न होना जितना खलता है उससे कहीं अधिक उनके बचपन में लौटने की उम्मीद बनती है।

जूते कोशिश करके भी याद नहीं कर पाते
उन पैरों को जो उनमें थे
वे सपना देखते हैं नन्हे पैरों का
जिनकेलिए वे हमेशा बडे साबित होंगे[1]

मृत्यु की भयावह स्थिति को अपने ढंग से देखने का यह तरीका है। संवेदना का यह बारीक अनुशीलन उनकी कविता का लोक है। शब्द जब थक से जाते हैं, तब वे स्मृतिगंधी बिंबों का प्रयोग करके स्मृति के भी अभेद्य दुर्ग को भेदते हैं। जीवन के

1. एक पतंग आनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 125, प्र. सं. 1984

छोटे-छोटे अनुभव, रोज़मर्रा में घटते जाते व्यवहार और लकदम स्मृतियों को झाँकने पर खण्ड-खण्ड में पूरा जीवन उमड आता है, इस संभावना के साथ कि जीवन तो अब शुरू होगा।[1] कल्पना की उडान भरते हुए कवि मृत्यु की पीडा को उम्मीद में बदल पा रहे हैं। पिता से उनका अन्तरंग संबंध तो नहीं था। उनके मरने पर थोडा आश्वास भी मिला था। लडकपन में अपने अकेलेपन को बढावा देने में पिता एक कारण बन गया था। इसलिए पूर्वज की स्मृति उम्मीद को भरने के समान रूपान्तरित होकर विकसित है। 'दिवंगत बहन' शीर्षक कविता की पंक्तियाँ है -

हर बार हमें अन्दर से किसी ने पुकारकर
खाने के लिए बुलाया
हर बार हमें मिली अन्दर
बैठी कमरे की मद्धिम रोशनी में
अपने प्राचीन चेहरे के साथ
निश्शब्द माँ![2]

दिवंगत बहिन और माँ की गंध, और वह प्राचीनतम चेहरे आदि कवि के ऊषर जीवन में थोडी नमी प्रदान करनेवाली है। इस थोडी सी नमी की तलाश में कवि उस निश्शब्द शांत, ध्यान मग्न माँ के पास पहूँचना चाहते हैं जो उन्हें शक्ति प्रदान

---

1. साक्षात्कार - कल जल शब्द नहीं होगा - ज्योतिष जोशी - जनवरी-मार्च - पृ. 129, प्र. सं. 1995
2. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 128, प्र. सं. 1984

करनेवाली है। जडें हमेशा नीरवता और नमी की तलाश में आगे बढती हैं। गहन मौन में जड़ों की यह तलाश कवि भी कर रहे हैं क्योंकि इन जडों के बिना, ओर उनके संभाले बिना हम टिक नहीं सकते हैं।

कवि बच्चों पर भरोसा रखते हैं। बच्चे गा रहे हैं तो वह गाना चट्टान के पार अकाश के भी परे आराम करते पुरखों को पुकारते हुए उन्हें जगाता है। बच्चे एक गेंद मृत्यु के पार फेंक रहे हैं। इसप्रकार गेंद फेकते समय उनकी उम्मीद यह है कि जो पिता वहाँ गये है वापस भेजेंगे।

बच्चे उडा रहे हैं
एक पतंग/अनंत में
जानते हुए कि माँ
उस में खिलौने लटकाकर लौटाएगी[1]

बच्चों की यह उम्मीद आनंत में माँ की उपस्थिति का यकीन कवि का उम्मीद है। इसलिए कवि बच्चों पर भरोसा रखते हैं। बच्चों की निरीहता और मासूमियत में जो पवित्रता है उसी की वजह है वे बच्चे और पुरखों के साथ हमेशा संबंध बना पाते हैं। मृत्यु को पराजित करते हुए पुरखों केलिए बच्चे गीत गा रहे हैं।

---

1. एक पतंग अनंत में (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी, पृ. 131, पृ. सं. 1984

अपने तीसरे संग्रह 'अगर इतने से' में आकर संवेदना कुछ तीव्र हो जाती है। उनके मूल सरोकारों में कोई परिवर्तन तो नहीं आया। उपस्थिति और अनुपस्थिति का सनातन द्वन्द्व अब भी मुखर है -

आत्मा के अंधेरे को
अपने शब्दों की लौ ऊँची कर
अगर हरा सकता
तो मैं अपने के
रात भर
एक लालटेन की तरह जला रखता।
अगर इतने से काम चल जाता।[1]

सनातन द्वन्द्व से घेरने से उत्पत्न आत्मा के अंधेरे को शब्दों की लौ से कवि दूर करना चाहता है। अगर यह संभव है तो स्वयं एक लालटेन बनकर जलने के लिए कवि तैयार हो जाते हैं। कवि को भरोसा है अपने पूर्वजों पर, जिन्हें शब्दों में भरकर कवि बचाना चाहते हैं। शब्दों पर भरोसा रखने वाले कवि उन शब्दों में पूर्वजों की स्मृतियों को प्रोज्वलित करना चाहते हैं।

मृत्यु जिजीविषा को उजागर करती है। मगर मृत्यु का क्षण नितांत पीडाजनक एवं आश्चर्यदायी है। जीने की झंझट एवं उसके आकर्षण की निरर्थकता

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 223, प्र. सं. 1986

को स्थापित करते हुए मृत्यु अचानक एक दिन आती है। उड़ती चिडिया के नीले पंख, या पतझर के नीरव गान किसी से भी मृत्यु की अनिवार्यता और जीवन की अर्थशून्यता दूर नहीं कर पाएंगी।

एक खिलौने की तरह
उठाएगी तुम्हें एक दिन मृत्यु
और बिना तोडे जस का तस
रख देगी
वहाँ जहाँ सुनसान होगा
न रोशन, न नीला, न नीरव
देवताओं से दूर
ओर पृथ्वी आकारा से
अछूता।[1]

मृत्यु का निपट एकांत, भय अनिच्छा का भाव इधर व्याप्त है। मृत्यु तुम्हें खिलौने की तरह उठायेगी और एक सुनसान जगह जहाँ न रोशनी होगी, न नीलापन होगा, कहते समय मृत्यु की विडंबनाजन्य शून्यता के बीच भी रोशनी, के दर्ज होने का अंदाज़ मिलता है।

चौथे काव्य संग्रह 'तत्पुरुष' में भी मृत्यु और अनंत के प्रति उलझन बनी रहती है। प्रथम कविता 'दस्तक' से लेकर बहुत सारी ऐसी कविताएं देखने को

---

1. अगर इतने से - अशोक वाजपेयी, पृ. 228, प्र. सं. 1986

मिलती हैं। अस्थिरता, नश्वरता और क्षरण के बीच घर की तलाश एवं आदमी के बचने की उम्मीद को व्यक्त करती ये कविताएँ सघन रूप से ऐन्द्रिक हैं। जीवन के प्रति लालसा अंततः जीवन के बिंबों से ही व्यक्त होती है वक्तव्यों से नहीं। घर, मुहल्लें, माँ-पिता बहन-बेटी और पृथ्वी ये सब मुखर और मूर्त है - 'फिर घर', 'कहाँ है घर' से लेकर उन प्रसंगों तक जहाँ एक नीरव स्त्री बैठी है गरम दूध से भरा गिलास लिए और काले जूतों पर पसरे हुए जीवित पैरों का दबाव है। दरवाजे पर हरी पत्ती की, अदृश्य कीडे की, एक प्राचीनतम हवा की और एक अटपटे बालशब्द की दस्तक। यह पत्ते, कीडे, हवा बच्चे का शब्द सब मृत्यु की अपरिहार्यता को सहनीय बनाते हैं। जीवन को गंभीर एवं गहन विचारों से प्रोज्वलित करने वाले सन्तो की, सर्दी से ठिठुरती बच्चों की, और व्याधियों से बची आत्माओं की दस्तक सुन रही है। जीवन रूपी दरवाज़े पर अनंत से दिवंगत माँ दस्तक दे रही है। जंगल में कही बिला गए गान की गूँज, गुज़रे दिनों की यातना से पीडित चेहरे लिये पूर्वजों की दस्तक। अब तक अजन्मे पोते ओर भविष्य में झरनेवाले क्षण की और अगले जन्म में व्यापनेवाली व्यथा की दस्तक हो रही है। इन बिंबों में इतिहास के पृष्ठों में काले अक्षरों से अंकित यातनाओं से पीडित पूर्वज ओर उसी शोषण की चिरन्तनता व्यक्त करने लायक अगले जन्म में व्यापने वाली व्यथा की दस्तक कवि को समय से जोड़ती है। अतीत, वर्तमान और भविष्य का एक संगीतिक सा प्रवाह उनकी कविता की निजी पहचान है।

दरवाज़े पर दस्तक
कभी न खुलनेवाले दरवाज़े की।
दरवाजे पर दस्तक
नीरव मृत्यु की
घबराए हुए देवताओं की,
विक्षुब्ध अनंत की।[1]

झकझोर देनेवाली, अनगिनत समस्याओं से द्वन्द्व ग्रस्त कवि मन इससे मुक्ति चाहता है। मुक्ति का आग्रह कविता में प्रकट है। कविता सच को बचाता है। सारी तबाही बरबादी के बाद कुछ न कुछ ज़रूर बचा रहेगा। कविता के थल में कवि जीवन मूल्य को बचाना चाहते हैं। दुनिया के सारे अवगुणों और पापों के एक दिन झर जाने की प्रतीक्षा रखनेवाले कवि यकीन करते हैं कि उन पापों के बीच असावधानी से हो गया पुण्य बचा रहेगा। सारी कविताएँ अनंत में विलीन होनेवाली चिड़ियों की तरह उड़ जाएगी। लेकिन नीरव वनस्थली में गिरनेवाले पंखों की तरह कुछ पंक्तियाँ, कुछ रूपक, कुछ शब्द बचे रहेंगे। ये ज़रूर बरबादियों के बीच तिनके का सहारा बन जाएँगे।

अपनी गाड़ी में ले जाएगी
लादकर मृत्यु सारा अम्बार और अटाला
पर छूट ही जाएगी
एक टूटी मेज़ और बालटी

---

1. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 291, प्र.सं. 1989

सब चले जाएँगे सुख दुःख धैर्य और लालच
सुन्दरता और पवित्रता
पर प्रार्थना के अंतिम अक्षय शब्द की तरह
बची रह जाएगी कामना....[1]

सारे विनाश के समाप्त होने का आग्रह करनेवाले कवि का विचार उतना आदर्शात्मक नहीं क्योंकि उनके भीतर आगे आनेवाले विक्षुब्ध क्षण का तीखा एहसास है। फिर भी कवि उम्मीद छोड़ने के लिए तैयार नहीं कि सबकुछ नष्ट नहीं होगा, कुछ तो बच ही जाएगा। कुछ तो बचेगा कहनेवाला कवि यह कहना नहीं भूलते हैं कि इनमें से थोडा सा 'आदमी' बचेगा। मृत्यु के साथ आदमी इस दुनिया से चले जाएंगे। लेकिन इस दुनिया में उनके जीने के निशान तो बाकी रहेंगे। लेकिन यह निशान आदमियत का, मानवीयता का निशान होगा। कवि कहना चाहते हैं।

अगर बच सका / तो वही बचेगा
हम सबमें थोड़ा सा आदमी
जो रौब के सामने नहीं गिडगिडाता
अपने बच्चे के नम्बर बढ़वाने नहीं जाता मास्टर के घर
जो रास्ते पर पडे घायल को सब काम छोड़कर
सबसे पहले अस्पताल पहूँचाने का जतन करता है,
जो अपने सामने हुई वारदात की
गवाही देने से नहीं हिचहिचाता[2]

---

1. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 300, प्र. सं. 1989
2. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ. 311, प्र. सं. 1989

सचाई और ईमानदारी जैसे श्रेष्ठतम मूल्यों को परिचित करानेवाले कवि इन्हीं मानवीय गुणों को बचाना चाहते हैं। अवमूल्यन के दौर में यह मर्मकथन सराहनीय है। कवि यह जताना चाहते हैं कि जो झूठे और बेईमान हैं, दुनिया ऐसे लोगों को याद नहीं करेगी। जो दूध में पानी मिलाने से हिचकता है, जो अपनी चुपड़ी खाते हुए दूसरे की सूखी के बारे में सोचता है, जो बूढों के पक्ष में या पास खड़े होने से नहीं ऊबता, जो अपने घर को गोदाम होने से बचाता है, जो दुनिया को नरक बना देने के लिए दूसरों को कोसता है ऐसे लोगों में आदमियत निहित है। उतने से थोड़ा सा आदमी ज़रूर बचा रहेगा। संसार के तमाम सच को बरकरार रखने की कोशिश जो करते हैं उन्हीं का निशान बचेगा। लेकिन मृत्यु कब होगी? यह बात किसी को मालूम नहीं है। आदमियत के निशान के बने रहने के साथ, याने उम्मीद के साथ मृत्यु के रूप से भी कवि परिचित हैं। मृत्यु के आभास का वर्णन यों है-

वह आएगी
जैसे आती है धूप
जैसे बरसता है मेघ
जैसे खिलखिलाती है
सपने में एक नन्ही बच्ची
जैसे अंधेरे में भयातुर होता है
खाली घर।[1]

---

1. तत्पुरुष (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी, पृ. 362, प्र. सं. 1989

दरवाज़े पर दस्तक देकर मृत्यु एक दिन अचानक कहेगी कि चलो, तुम्हारा समय हो चुका है। ऐसे में यह उम्मीद नहीं रखी जा सकती कि पृथ्वी का फिर एक बार हरा होने को देख सकूं। आकाश को फिर दयालू और उसे फिर विगलित होने में अभी थोड़ा सा समय और है कहकर हम मृत्यु को टाल नहीं सकते। मृत्यु कभी इन्तज़ार नहीं करती। वह ज़रूर आयेगी। पर उसके आने के लिए कितने दिन और बचे हैं। यह कोई नहीं जानता है। 'तत्पुरुष' संकलन की अंतिम कविता में भी 'विदा' की सचाई का सहज स्वीकार है। लेकिन इस विदा को पूर्णतः चला जाना नहीं कह सकते।

तुम चले जाओगे
पर थोड़ा सा यहाँ भी रह जाओगे
जैसे रह जाती है
पहली बारिश के बाद
हवा में धरती की सोंधी सी गंध
भोर के उजास में
थोड़ा सा चन्द्रमा
खंडहर हो रहे मन्दिर में
अनसुनी प्राचीन नूपुरों की झंकार[1]

सुनसान जगत में व्यक्ति के चले जाने के बाद भी उसकी उपस्थिति का बखान करते हुए थोडी सी हंसी, आंखों की थोड़ी सी चमक हीं रह जाएँगी। यह हँसी और चमक

---

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 404, प्र. स. 1989

प्रार्थना की तरह पवित्र और अदम्य तुम्हारी उपस्थिति दर्ज करते हुए, तुम्हारे हमारे बिल्कुल पास होने का अहसास करायेगा।

'कहीं नहीं वहीं' जो कवि का पाँचवाँ काव्य संग्रह है, जिसमें संकलित कविताओं की मनोभूमि के अनुसार उसे चार भागों में विभाजित किया जा सकता है - अवसान, श्रृंगार, अवकाश और भक्ति 'अवसान' शीर्षक प्रथम भाग की कविताओं में मृत्यु को आसक्ति से समझने का प्रयास किया गया है। लगातार जीवन के अन्तस्थल में विचरते रहने के कारण में कविताएं अतिसूक्ष्म भावों को समझने और परिभाषित करने के अन्दाज़ में रचित है। मृत्यु और अनुपस्थिति की ये कविताएं जीवन से विरक्ति की नहीं अनुरक्ति की पोथी है। मृत्यु मनुष्य का एक चिरन्तन सरोकार है और कविता मनुष्य की बुनियादी सरोकारों को हर समय खोजती सहेजती है। मृत्यु उनके यहाँ कोई दार्शनिक तत्व के रूप में नहीं जिजीविषा को प्रकट करने की एक विस्तृत फलक बनकर आती है। स्वयं अशोक वाजपेयी का कथन है - "कविता वही लोग लिखते और पढते हैं जो जीवन में सिर्फ रस नहीं लेना चाहते बल्कि उसमें कुछ बचाना चाहते हैं।[1]

शायद कभी किसी सपने की दरार में
किसी भी क्षण भर की याद में

---

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी पृ. 11, प्र. सं. 2001

किसी शब्द की अनसुना अन्तर्ध्वनी में
हमारे होने की हलकी सी छाप बची होगी
बस हम न होंगे।[1]

यह पार्थिव शरीर तो नश्वर है, मृत्यु एक अनिवार्य स्थिति है। जन्म के बाद मृत्यु का भी वरण करना होता है। लेकिन नश्वरता के बाद यहाँ हमारा कोई न कोई निशान अवश्य बचा रहेगा, कभी चित्र के रूप में या कभी स्मृति बनकर हमारे होने की हल्का-सा आभास बचा रहेगा। इस सत्य से मिलती-जुलती एक अन्य कविता है - 'अन्त के बाद'

अन्त के बाद
हम समाप्त नहीं होंगे
यही जीवन के आस पास
मंडरायेंगे
यहीं खिलेंगे गन्ध बनकर
बहेंगे हवा बनकर
छायेंगे स्मृति बनकर[2]

अन्त में बचने ओर फिर से बने की इच्छा ही जीवन है। कविता ऐसी मुक्ति ओर ऐसा बचान है। इसलिए 'अन्त के बाद-1' शीर्षक कविता में वे लिखते हैं कि

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 16, प्र. सं. 1991
2. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 25, प्र. सं. 1991

अवसान के उपरान्त हम नहीं बचेंगे। लेकिन हमारे यहाँ रहने का निशान फिर भी बचा रहेगा। इस कविता के साथ लिखी गयी 'अन्त के बाद-2' में दोनों के अन्तर्विरोधी विन्यासों और वक्तव्यों को देखकर लगता है कि यह अन्तर्विरोध कवि की दुर्बलता नहीं शक्ति है। एक ओर देह की अमरता का अनन्त स्वप्न.... और दूसरी ओर फिर आना नहीं होगा" का निर्मल नकार.... यह आन्तर्विरोधी विन्यास में मृत्यु की रहस्यात्मकता की चिरंतन समस्या प्रकट होती है। इस समस्या का कोई शाश्वत समाधान अब तक संभव नहीं हो पाया है और इसकी संभावना भी नहीं-

कहाँ रह जाएगा पकी इच्छाओं का धीरज
सपने और सच के बीच बना
बे-दरो-दीवार का घर
और अगम्य में
अपने ही पैरों की छाप से बनाई
पगडिण्डयाँ
जीवन भर के साथ संग के बाद
हम अकेले क्यों रह जाएँगे उस यात्रा में?[1]

इन पंक्तियों में मृत्यु की भयावहतः ही मुखर होती है।

ज़िन्दगी की रफ्तार में समय तो चलता रहेगा। साथी, हमसफर सब हमसे बिछुड़ जायेंगे। फिर भी हम टिके रहते हैं। इस विड़ंबना को लेकर कवि चिंतित है।

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी, पृ. 17, प्र. स. 1991

चाहत में हमेशाकी तरह अकेले
हिम्मत में अकेले
गोधूलि में अकेले[1]

यदि हमारा कोई आत्मजन मरता है तो भी हम जीते हैं। वह अन्त तक हमारा साथ निभाता भी नहीं। पेड़ से जिस प्रकार सूखे पत्ते झरते रहते हैं वैसे एक-एक होकर नष्ट होता रहता है। बचपन की आकाश चढ़ती उम्मीद और धीरज कहाँ खो जाता है? युवत्व का उत्साह ओर जिज्ञासा आधुनिक युग में उनसे छीन लिया जाता है। शब्दों पर भरोसा, और अनंत का पड़ोसी होने का आश्वासन सब यों ही समय की गतिशीलता के भँवर में ओझल हो जाते हैं। व्यक्ति अकेला रह जाता है।

कोई नहीं देख पाएगा
हमारा न होना
जैसे प्रार्थना में डूबी भीड से
लोप हो गये बच्चे को
कोई नहीं देख पाता।[2]

'हम' शीर्षक इस कविता में समाज में व्यक्ति की हैसियत पर विचार प्रस्तुत है। व्यक्ति का व्यक्तिपन उतना मुख्य नहीं है। समाज यहाँ जीवन का वह विस्तार है जिसमें व्यक्ति का उतना महत्व नहीं है जिस प्रकार भींड में से कोई बच्चा लापता

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 36, प्र. सं. 1991
2. वहीं - पृ. 19, प्र. सं. 1992

हो जाता है। मुख्य है उसका मूल्य और उसकी दृष्टि। जब तक ऐसे मूल्य या ऐसी दृष्टि संस्थित नहीं होती तब तक व्यक्ति का रहना, जीना, खाना, पीना यांत्रिक कार्य-कलाप मात्र है।

जीवन के बियाबान
मृत्यु के मरुस्थल में
होने न होने की गोधूलि में
गिरते पड़ते हम
फिर ओझल हो जायेंगे।[1]

जिन्दगी के उतार-चढाव का अंत मृत्यु में समा जाता है। मनुष्य हमेशा अपने अस्तित्व, अहमियत की तलाशा करता रहता है। इस तलाश में वह कभी अपने को खोता है तो कभी अपने को पाता है। लेकिन यह खोना और पाना कोई अहम बात नहीं है क्योंकि अंत में लोग किसी अज्ञात में ओझल हो जाते हैं। इस ओझल होने की नियति से कोई मुक्त नहीं है। कवि यहाँ भी मृत्यु की अनिवार्यता की ओर इशारा करते हुए इसे मनुष्य की आत्यन्तिक नियति घोषित करते हैं।

सृजनात्मकता की नमी के प्रति आग्रह उनकी 'शेषगाथा' शीर्षक कविता में दृष्टव्य है। निराशा के बीच आशा को संस्थित करके आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त करना उनका लक्ष्य नहीं है। जीवन की परम्परिकता ओर उसकी गतिशीलता को

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 29, प्र. सं. 1991

पहचानना ही उनकी कवि दृष्टि का उद्देश्य है। कविता में वे अपने आस पड़ोस को एक पारिवारिक माहौल के रूप में, बच्चों के शोर-शराबे सहित, रखना चाहते हैं। अपनी आँखों में उम्मीद का आखिरी कतरा गिरने से बचाये हुए मरणधर्मी जीवन में मृत्यु के उपरान्त भी मनुष्य यहीं वापस आना चाहता है। पुनर्जन्म का आग्रह इस संग्रह की कुछ कविताओं में उपलब्ध है। जीने का उत्कट आग्रह पुनः घर की तरफ वापस आने के लिए उत्प्रेरित करता है -

सब कुछ राख हो जाने के बाद भी
बची रह गयी पवित्र चिनगारी की तरह,
नीम के बौर की कड़वी-मीठी गंध की तरह
किसी बेहत बूढे के जीवनव्यापी विषाद या
किसी बच्चे की अकारण हँसी की तरह
मैं फिर आऊँगा
भले ही जन्मान्तर के बाद
तुम्हारे ही पास।[1]

इस दुनिया ने उन्हें जितना संघर्ष दिया हो फिर भी वे यहाँ इस मटमैलेपन में पुनः वापस आना चाहते हैं। इस केलिए छोटी-सी ज़िन्दगी काफी नहीं है। क्षणिक, अल्पमात्र जीवन से कवि तृप्त नहीं हैं। जीवन के सौन्दर्य को आदर और प्यार के साथ देखनेवाले कवि जीवन की क्षणिकता को भी अर्थपूर्ण बताना चाहते है।

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - 1991

अपने घाव, अपने चेहरे पर धूल,
अपनी आत्मा में थकान लिये,
अपनी आँखों में उम्मीद का आखिरी कतरा
गिरने से बचाए हुए
जन्मान्तर और नामहीनता की राहत
अस्वीकार कर
हम फिर इसी मंटमैले घर
वापस आयेंगे[1]

यह जीवन की ओर पुनः वापसी का विचार अत्यंत आशाजनक है। अपनी आँखों में उम्मीद का आखिरी कतरा गिरने से बचाये हुए कठिन से कठिन समय में वह गुज़रना चाहता है। चारों ओर व्याप्त क्रूर नृशंसता के बीच जीवन की व्यवस्था को थामकर थके माँदे ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं। जिजीविषा हमें आगे भी की स्फूर्ती प्रदान करती है।

मौसम बदले न बदले
हमें उम्मीद की
कम से कम
एक खिड़की तो खुली रखना चाहिए।[2]

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - प्र. सं. 1991
2. वहीं

उम्मीद की यह खिड़की कई आयामों के साथ कविता में विन्यसित है। सबओर फैले त्रस्त वातावरण से थोड़ी गरमाहट की इच्छा से वे खिडकी को खोलते हैं। मृत्यु की अनिवार्यता से उत्पन्न निराशा के आगे कवि उम्मीद की एक खिड़की खुलकर रखना चाहते हैं। मृत्यु के बाद भी कुछ न कुछ इधर बचेगा, या अवसान के बाद भी हम इस मटमैलेपन की ओर वापस आएँगे।

"फिर एक दिन धूप की तरह वह आयोगी
गरमाहट की तरह शरीर पर छा जायेगी
एक बच्चे को उँगली पकड़कर ले जाते हैं
जैसे सुबह सुबह घुमाने
वैसे अपने साथ ले जायेंगी।[1]

इन पंक्तियों में मृत्यु रूपी सूक्ष्म सत्य को अत्यंत सहज एवं स्वाभाविकता के साथ चित्रित किया गया है। मृत्यु की यह निकटता जीवन की यथार्थपरक आत्यन्तिकता से ओतप्रोत है। अन्त की यह आत्मीय पहचान कविता में अनगिनत सन्दर्भों को संकेतित करने में सक्षम है। मृत्यु की सघनता के बीच भी जीवन के प्रति लालसा मृत्यु को भी सहनीय बनाती है। मृत्यु जीवन का अवसान है और पुनः जीवन में वापसी का कारण भी। मृत्यु अपरिहार्य है। परंतु यह अपरिहार्यता जीवन के प्रति विराग भाव उत्पन्न करे ऐसा नहीं। इसके विपरीत यह अपरिहार्यता जीवन के प्रति

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 38, प्र. सं. 1991

लगाव को, जिजीविषा और रसिकता को उत्कट बना देती है। घर की खोज और उस खोज में पूरे कुटुम्ब, पडोस, पशु-पक्षी वनस्पति सबको शामिल करने के बाद यदि लगे कि उपसंहार अंततः जीवन का ही संहार होगा तो हठात् इसे स्वीकर करना कठिन है कि-

जीवन भर के साथ-संग के बाद
हम अकेले क्यों रह जायेंगे उस यात्रा में[1]

और यह शायद सांत्वना है कि हम रूप बदल कर आयेंगे, पक्षी की तरह, हरियाली के तरह, पलाश पर नही छाल की तरहः वह अंत/जिसके बाद हम वापस आएँगे। और पहचाने न जाएंगे[2] कहनेवाले कवि में फिर भी जीवन के प्रति राग, मोह अटूट है इसलिए इसी मटमैले घर में ही वापस आना चाहते है। "मृत्यु पर लिखी ये कविताएँ जीवन के प्रति चिम्मड राग का घोष करती है। जहाँ यह हमारा स्वीकार दीखता है। अंत का स्वीकार और अंत के बाद कुछ बचे रहने का स्वीकार आदि पूरी वृत्ति की एकाग्र अभिव्यक्ति है। कुमार गंधर्व के लिए लिखा गया विदा गीत 'बहुरि अकेला' जो जीवन के विभिन्न कोनों, सधियों, बचपन से आज तक के प्रसंगों से जूझते-गुज़रते अंत में मानो इस समाधि लेख तक पहुँच रहे है। मृत्यु की ये कविताएं जीवन के महाप्राण स्वर है।[3]

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 23, प्र. सं. 1991
2. वहीं - पृ. 29, प्र. सं. 1991
3. कविता और समय - अरुण कमल - पृ. 146, प्र. सं. 1999

संगीतकार कुमार गन्धर्व की अद्वितीय प्रतिभा भारतीय संगीत के प्रेमियों और विदग्धों के लिए सुपरिचित रही है। वे ऐसे संगीतकार हैं जिनके गायन में हर बार उदात्त की उपलब्धि होता था और सुननेवाला उसकी तन्मयता का सहर्ष वशंवद, स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठकर अनहद का निसर्ग साक्षात् करता था। उनके स्वरों के आरोह-अवरोह में आसक्ति और अनासक्ति का बारी-बारी से अहसास होता रहता था। उनका गायन पूर्णता की साधना था। जिसकी कुछ विलक्षणताएँ थी ओर सहज मानवीय जटिलताएँ भी।[1] ऐसे संगीत के साधक कुमार गंधर्व और कवि-सर्जक अशोक वाजपेयी के सृजनात्मक संयोग है 'बहुरि अकेला' की कविताएँ।

'बहुरि अकेला' संग्रह में कुमार के व्यक्तित्व और गायन को निस्सन्देह केन्द्रीयता प्राप्त है, पर वह अपनी स्वायत्तता में उपजीव्य से छूटकर भी कम मूल्यवान नहीं है। इनमें कुछ अपनी खोज-बीन कवि ने की है। कुमार की स्थिति और नियति के साथ-साथ कवि ने अपनी भी स्थिति और नियति का अनुसंधान किया है। शुरू में ही कवि जीवन और मृत्यु के अन्तः संबंधों और उसकी नियताप्ति का संकेत करते हैं -

---

1. दस्तावेज - बहुरी अकेला - रेवती रमण - जनवरी मार्च 1993

जीना बेढब रहा हो और मरना बेतरतीब
पर अंत्येष्टि होती है सुधर
छुटकारे का सामूहिक व्याकरण बेचूक विन्यस्त होती है।[1]

*  *  *  *  *

जो नहीं है उसके कई नाम हैं
लोप अनुपस्थिति अन्त समापन मृत्यु अवसान
पर सभी उसके होने को याद करते हुए
कोई भी नहीं जो उसके न होने को व्यक्त करे।[2]

आत्मालोचन के सन्दर्भ में इन्हीं पंक्तियों में आत्मप्रताडन का स्वर शामिल है। पर यह भावावेश में पड़कर एकपक्षीय समर्पण के कारण नहीं है, कुछ इसमें अपनी भी नियति का उपहास है, वेदना मिश्रित उपहास अवसान की अनिवार्यता को जानता है। शक्ति बटोरने के लिए अशोक वाजपेयी जीवन के अवशेषों से ही अर्थ लेते रहे हैं। मृत्यु भी कही न कहीं जीवन की पूर्णता का ही द्योतक है। एक यात्रा पूरी कर आत्मा चल पड़ती है, पुनः अकेले एक नयी यात्रा के लिए। अशोक वाजपेयी इसे आकस्मिक अवसान के पड़ोस में सहमा सा गया जन्मदिन में रूपान्तरित करते है। इसके पीछे जीवन और मृत्युसंबंधी भारतीय अस्तित्व चिंतन सक्रिय है। जिसप्रकार संध्या होने का मतलब दिन की रोशनी के मिटने से होने पर

---

1. बहुरी अकेला - अशोक वाजपेयी - पृ. 165, प्र. सं. 1992
2. वहीं - पृ. 166, प्र. सं. 1992

भी हममें संध्या पुनः प्रभात का संदेश प्रदान करती है उसी प्रकार मृत्यु भले ही जीवन का समापन है लेकिन पुनः इधर प्रोज्वलित होने के लिए।

थक कर नहीं बैठते पूर्वज
उसके पास समय ही समय है
कहीं नहीं जाता है
सिर्फ प्रतीक्षा करते है पूर्वज
जब एक और आकर बैठता है पाँत में।[1]

पाँचवी कविता इसदृष्टि से अप्रतिम है कि इसमें पूर्वजों की दिनचर्या का आत्मीय रेखांकन है। कुमार गंधर्व के आकस्मिक लोप से वे तो पूर्वजों की पांत में जगह पा गये हैं पर अशोक वाजपेयी इस तरह से अपने जीवन में आये बडे स्तंगत एवं अकेलेपन का साक्षात्कर रहे हैं। इस संग्रह की समूची कविताएँ विदा का करुण सक्षय प्रस्तुत करती है। इस संग्रह की कविताओं में कवि ने खुद को पहचानने-परखने का प्रयास किया है। पर कई बार उन्होंने कुमार गन्धर्व में निहित गायक के स्वर समारोहों की आकृति सुनिर्दिष्ट करने की कोशिश की है। उनकी गायन शैली, उनकी भंगिमाओं और स्वर समारोहों के अत्यन्त सघन बिंब बहुत सारी कविताओं में प्रभावशाली बन पड़े हैं -

---

1. बहुरि अकेला - अशोक वाजपेयी - पृ. 169 प्र.सं. 1992

हमें घेरता हुआ / हृदय के अँधेरे नीलांचल में
तेवर की तरह बजता हआ/गूँजता हुआ,
लिखा जाता हुआ/शब्दों के बीच मौन सा[1]

*  *  *  *  *

प्राचीन अंधेरो में / जलता हुआ दिया
बार-बार काँपती / गुल होती
फिर जल उठती लो / थोड़ी देर को हैरान चेहरा
हमें निहारता
और सुबह के पहले है / बुझता घुँघवाता दिया।[2]

मृत्यु से उत्पन्न अवसाद के घने अंधेरे में भी कुमार गन्धर्व की स्मृति छवि से कवि एक कौंध उत्पन्न करते हैं। कवि की जिज्ञासाओं में जीवन मूल को जानने का जातीय विवेक निहित है। गायन के बाद एक ऐसे आदि अनुभव का आद्र स्पन्दन, एक बीहड आनन्द की अनगूँज छोड देता था, वहाँ से कविता शुरू होती है। संगीत के मौन को शब्दो में मुखरित करना एक अन्य संगीत को जन्म देता है। रेवती रमण का कथन है कि - जिस तरह कुमारजी का गायन भक्तकवियों का चित्रांकन नहीं है, उसी तरह अशोक वाजपेयी की कविताएँ कुमारजी के गायन की अभिव्यंजना नहीं है - वे अपने शब्दों के सहारे केवल ऐसा परिवेश रचते हैं, जहाँ उन खाली जगहों को

---

1. बहुरि अकेला - अशोक वाजपेयी - पृ. 185, प्र. सं. 1992
2. वहीं - पृ. 189, प्र. सं. 1992

मुखरित किया जा सके, जिसे कुमार गन्धर्व अपने संगीत में छोड देते थे।[1] कुमार गन्धर्व 'स्वर के स्वराज्य' में उत्मुक्त रहे। अशोक वाजपेयी शब्द के शहर में जीवन और मृत्यु के अन्तर्द्वन्द्व के साक्षी बने। उनकी स्मृतियों को कविता संभव बना रही है - जीवन का मर्म पाने और संप्रेषित करने की चुनौती भरी विकलता के साथ।

विदा का कोई समय नहीं है
हर क्षण विदा है
जो बीतता है / विदा लेता है
अक्सर बिना जाने भी।[2]

प्रिय बन्धु की आकस्मिक विदाई से कवि का हृदय टूट गया है। मृत्युबोध कवि को निरन्तर मथता रहा है। हर क्षण, विदा होता है। जीने से मतलब मृत्यु है। अर्थात् एक-एक पल जिससे हम विदा लेकर हम मृत्यू की परिसमाप्ति की ओर जा रहे हैं। इस विदागीत में अशोक वाजपेयी अपनी वेदना और विह्वलता में मनुष्य की नियति और स्थिति को दार्शनिक सत्य से अलग काव्य सत्य में उजागर करते हैं। जीवन की नश्वरता और मृत्यु की सर्वाधिक मूर्त स्थिति को वे कवि की तरह स्वीकार करते हैं। यह हार मान लेने की तरह नहीं है। आत्यंतिक सच को स्वीकृति देने की तरह है।

---

1. आलोचना - अप्रैल-जून, 1989
2. बहुरि अकेला - अशोक वाजपेयी, (तिनका तिनका-2) पृ. 179, प्र. सं. 1992

'अविन्यों' कविता और गद्य की ऐसी पुस्तक है जो एक ही स्थान पर, दक्षिण फ्रांस के अविन्यों शहर के एक प्राचीन इमारत में रहकर कुल 19 दिनों के दौरान लिखी गयी थी। यह इमारत एक प्राचीन मोनास्ट्री थी जहाँ कार्थूसियन संप्रदाय के सन्त प्रायः मौन रहकर अपनी साधना करते थे। इस काव्यसंकलन में शायद पहली बार एक तरह का आध्यात्मिक भय या कि आधिभौतिक बेचैनी प्रवेश करते है। ईश्वर एक काव्याभिप्राय के रूप में पहले भी कवि को आकर्षित करता रहा है। कवि के अपने जीवन में ईश्वर की उपस्थिति-अनुपस्थिति का सनातन द्वन्द्व परस्पर संबंधित होकर बचपन में ही घर कर गया था। यह द्वन्द्व का समाधान अनन्त के पड़ोस में जाने के आग्रह में भाषा का अध्यात्म रचने में, पवित्र सच की खोज करने में कार्य कर रहा है। जो उपस्थिति पूरे दृश्य पर छायी रहती थी उसी में अनेक अनुपस्थितियाँ भी छुपी रहती थी। उपस्थित-अनुपस्थित के पडोस में ही था। एक को दूसरे के बिना देखना या पुकारना संभव ही नहीं था। मानो उपस्थित आता था तो उसके साथ अनुपस्थित भी आ ही जाता था। कवि के मध्यवर्गीय परिवार को धार्मिक नही कहा जा सकता है। माँ धार्मिक थी लेकिन अपनी आस्था दूसरों पर थोपने में उनकी दिलचस्पी नहीं थी। पिता अधिकतर धार्मिक संस्कारों के प्रति व्यंग्य भाव दिखाते थे। सामने के नाना नानी धार्मिक थे। लेकिन एक दिन कवि के संसार से ईश्वर अनुपस्थित हो गया था। उसका स्पर्श, उसका बोध और उसकी उपस्थिति का अहसास जाता रहा।

बाद में सेंट स्टीफेन्स कॉलेज चैपल के पास से गुज़रते समय, वहाँ बजते प्रार्थना संगीत को सुनते समय, इलियट की कविता में व्याप्त ईसाइयत को पहचानते वक्त धीरे धीरे यह अहसास गहरे होने लगा कि मूल अनुपस्थिति ईश्वर की ही अनुपस्थिति है।[1] शब्द उपस्थिति है पर ऐसी कि उनमें अनुपस्थिति भी ध्वनित होती है। शब्द पास जाते हैं और उसी क्रम में दूर भी होते चलते हैं। कविता अक्सर उपस्थित होते हुए अनुपस्थिति को और अनुपस्थित होते हुए उपस्थित भाषा में अवतरित करने की एक अभिशप्त सी चेष्टा है। इसीलिए प्रेम में भी मृत्यु है जीने के सबसे उत्कट क्षण में ही बीतने का सबसे सघन बोध है। प्रेम करना बीतना है, बीतने को थामने की कोशिश के बावजूद। कविता प्रायः इस बीतने का अंकन है। वह अनुपस्थित को दिया गया उपस्थिति का एक सर्वथा वेध्य प्रतिरोध है। इस संकलन में उपर्युक्त संवेदनाएं अधिक मुखर हो उठती हैं। अर्थात् 'अविन्यों' में जैसे उसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के सनातन द्वन्द्व का कविता सीधे सामना करती है। जानबूझकर कविता मध्यकालीनता के कई उपदानों को समकालीन प्रसंग में पुनराविष्कृत करती है। इस के अलावा अपने घर, परिवार और दुनिया से विच्छिन्न होने के कारण उत्पन्न अवसाद भी है -

यहाँ शान्ति है
पर अभय क्यों नहीं?

---

1. जो नहीं है अशोक वाजपेयी पृ. 10, प्र. सं. 1996

यहाँ सुनसान है
पर शब्द के पहले को मौन क्यों नहीं?
यहाँ जमा हुआ अंधेरा है
पर रोशनी के बाद का क्यों नहीं?[1]

मोनास्ट्री के शान्त वातावरण में प्राचीन पवित्र गंध है। लेकिन हर कहीं व्याप्त सन्नाटे में सूनेपन भी है। वहाँ बीतने वाले हर क्षण में अनुपस्थिति का अहसास कवि में तीव्र होने लगता है।

चौदहवीं शताब्दी के अपने इस कमरे की खिडकी से
जब में सामने की ओर झाँकता हूँ
तो सामने के चैपल की ओर झाँकता हूँ
लगता है दो आँखें एकटक घूर रही हैं।
बिना पहचाने मैं उन आँखों को
जिन्हें शायद में दिन दहाडे एक दुस्स्वप्न में ही देखता हूँ।
नाम देना चाहता हूँ : ईश्वर।[2]

अपने जीवन में ईश्वर के उपस्थित न होने से कवि शून्यता का अनुभव तो नहीं करते हैं क्योंकि कवि पृथ्वी, आकाश, घर, परिवार माँ-बाप, जीवन-मृत्यु के आस पडोस में मँडराते हुए एक पवित्र ईश्वरहीन अध्यात्मिकता का अनुभव करते हैं। इसलिए डॉ. नन्दकिशोर आचार्य का कथन सार्थक लगता है - यह याद रखना ज़रूरी है कि

---

1. अविन्यों अशोक वाजपेयी, पृ. 219 प्र. 1995
2. वहीं - पृ. 238, प्र. सं. 1995

अशोक वाजपेयी वैष्णव संवेदना के कवि लगते हैं, वैष्णव संप्रदाय के कवि कतई नहीं। इसका कारण है अपनी सभी लौकिक व्याप्तियों के साथ जीवन के प्रति अनुरागपूर्ण स्वीकार और उसकी पवित्रता और रहस्य का गहरा बोध। वह सहज और पारदर्शी कविता है। कविता की यह पारदर्शिता और सहजता अर्थात् उनका शिल्प भी, दरअसल, उनकी संवेदना की वैष्णवता की ही शैल्पिक अभिव्यक्ति है। अपने से बाहर के जीवन के प्रति उसका स्वीकार इतना सहज और आत्मीय है कि उसके बारे में कवि की बातचीत उसकी अपनी आन्तरिक दुनिया के बारे में बातचीत लगने लगती है।[1] यह जीवन की पवित्रता को बरकरार रहने के आग्रही कवि मन से निसृत कविताएं है।

'अभी कुछ और' संकलन में भी मृत्यु संबंधी, प्रेम संबंधी, अनंत संबंधी आग्रह कायम है। कुछ प्रखर होकर कवि यह चाहते हैं कि कविता की दुनिया में शब्दों की अमरता का गान गाने के बाद भी अभी कुछ और करने को बाकी है। इस संग्रह में आकर मृत्यु संबंधी कविताएँ कम हैं। लेकिन इधर भी समय, पवित्रता, शब्द पर भरोसा, ओर थके हारे समय को संभालने का आग्रह सक्रिय है। इसके साथ अपने प्रिय संगीतकार मल्लिकार्जुन मंसूर पर लिखी गयी और प्रिय चित्रकार जगदीश स्वामिनाथन पर मृत्यु उपरांत लिखी गयी कविताएँ हैं। इन्हीं में मृत्यु कीपीडा से

---

1. साहित्य का स्वभाव - नन्दकिशोर आचार्य, पृ. 136, प्र. सं. 2001

व्यथित कवि हृदय हममें उन की उपस्थिति का बखान करते हुए थोड़ा दिलासा का अनुभव कर रहे हैं।

देवताओं और गन्धर्वों के चेहरे
उन्हें ठीक से दीख नहीं पड़ते
अपनी शैव चट्टान पर बैठकर
वे गाते हैं
अपने सुरों से / उतारते हुए आरती संसार की[1]

यह कविता कुमार गन्धर्व के अनुपम संगीतानुभव के समान ही मंसूर के गायन के उदात्त अनुभव का परिणाम है। एक जलप्रपात की तरह यह संगीत अवतरित होता है, जिसमें स्वरों की हरियाली राग चाँदनी में थमकती रहती है। यह अजस्र स्वरधारा की गति में श्रोता अपने को डुबे देता है। इतनी तल्लीनता के साथ लग जाता है कि वह एक बूढे ईश्वर के समान हमारे पास आता है। हमें उँगली पकडकर अनश्वरता के पडोस में ले जाता है। याने कि उनके संगीत में इतनी क्षमता है कि हम विलीन हो जाता है। पवित्र दुनिया को सृजित करने का जतन करता है। उनके गायन के अवसर पर यदि ईश्वर उस रास्ते आ रहा होता तो पहचान नहीं पायेंगे कि यह स्वयं में हूँ या मल्लिकार्जुन मंसूर। ईश्वर को मानवीय प्रतिरूप मानकर कलाकार की पवित्रता को इस में प्रस्तुत किया गया है -

---

1. अभी कुछ और - अशोक वाजपेयी - पृ. 343, प्र.सं. 2001

राग के अदृश्य घर का दरवाज़ा खोलकर
अकस्मात वे बाहर आते हैं।
बूढे-सरल सयाने
राग की भूल भुलैया में
न जाने कहाँ
वे बिला जाते हैं
और फिर एक हैरान बच्चे की तरह
न जाने कहाँ से निकल आ जाते हैं[1]

जीवन की नश्वरता के बोध के साथ जीवन को संगीत में, कला में, कविता में बचाने को चाहनेवाले कवि यह भी जोड़ते हैं कि हम इसी जगह वापस आ जाएँगे। 'समय के पास समय' संकलन की एक कविता है 'धुँधली तसवीर।' अपनी माँ के मरने के इतने सालों के गुज़र जाने पर बैठकखाने में रखी माँ की तसवीर धुँधली होती जा रही है। इस धुँधली तसवीर को देखकर कवि सोचते हैं कि मुझमें ऐसा बचा ही क्या है जो उनका बेटा कहाऊँ! माँ ने अपने लाड से इस बेटे को थोडा बहुत बिगाडा लेकिन बरबाद तो नहीं किया।

उसकी तसवीर धुँधली होती जाती है रैक पर
पर क्या मेरी शिराओं के बहते रक्त में
मेरे विलंबित सपनों में

---

1. अभी कुछ और - अशोक वाजपेयी, पृ. 346 प्र.सं. 1998

किसी का बुरा सोचने की मेरी झिझक में
वही मातृछवि नहीं दमकती[1]

जीवन की विफलता के बेशाहत ओसारे में बैठकर कवि अपने जीवन को मुड़कर देखते हैं। उदास होकर कवि पहचानते हैं कि सारे चकाचौध भरे दृश्य में हमारा कोई स्थान नहीं है। लेकिन कवि इसे हार मानने को तैयार नहीं। अंत में विजयी होने की महत्वाकांक्षा के कारण से भी नहीं। हारकर भी अपनी लड़ाई जारी रखने की माँ की जो आदत है वह बेटे में भी सन्निहित है। इस पहचान के साथ कवि अपने में माँ की तसवीर से बाहर, तसवीर से परे जो उपस्थिति है अनुभव करते हैं। माँ की करुणा की छाया में अपूर्व शक्ति बटोरनेवाले कवि के लिए मृत्यु इसलिए एक आतंक नहीं। मृत्यु की अनिवार्यता का सहज स्वीकार इधर भी है।

अपने दसवाँ काव्य संग्रह 'इबारत से गिरी मात्राएँ' संकलन में जीवन को बीतने से बचाने की कवि मन की लालसा स्पष्ट झलकती है। कविता की शब्द भंगिमा संवेदना की गहरी अन्तरंग अनुभूति के कारण तीव्र है। कवि पल-पल देखना चाहते हैं, दुनिया गतिविधियों को समय के ढलते जाने को और छोटे सच के बेनकाब किये जाने को।

हो सके तो मैं बचाना चाहता हूँ
सुन्दरता को समय से

---

1. समय के पास समय - अशोक वाजपेयी - पृ. 50, प्र. सं. 2000

अपनी पगडण्डी को किसी मार्ग में लय होने से
अपने सच को अपने ही अन्दर मुरझाने से
अपनी आवाज़ को थरथराने और घबराने से।[1]

'बीतते को देखना' शीर्षक इस कविता में एक सजग चौकन्ने कवि देखने को मिलता है।कवि यह कोशिश करना चाहते हैं कि बचपन की पाठ्य पुस्तक से हितोपदेश का कोई अधपाठ बचाए। हलवाई के यहाँ से फेंके गये जूठे पर झपटने वाले बच्चों के जीवन की असंभव मधुरिमा पर कवि ध्यान देते हैं। अशोक वाजपेयी की कविताओं में अनगिनत ऐसे बिम्ब देखने को मिलेंगे जो सामान्य की दृष्टि में नहीं पडते हैं।

ड्राइवर सरनामसिंह की दुर्घटना में आकस्मिक मृत्यु के आतंक से लिखी गयी कविता में मृत्यु का भय एवं स्वीकार दोनों है। अपनी निस्सन्तान पत्नी को बहुत चाहनेवाले उसे बच्चे की तरह प्यार करने और बचाकर रखनेवाला सरनाम अब कहीं नहीं है। नौकरी, बीमा, अस्पताल, थाने आदि के दस्तावेज़ों में दर्ज एक नाम की तरह वह रह गया है। हर सुबह सरनाम की बाट जोहनेवाले कवि का पोता दो दिनों से उसके इन्तज़ार में है। वह देखता है कि गाडी वहीं अभी तक खड़ी है, सरनाम कहाँ गया?

---

1. इबारत से गिरी मात्राएं - अशोक वाजपेयी - पृ. 52, प्र. सं. 2002

और उसके यह जानने का कोई तरीका नहीं है कि सरनाम अब नहीं है
जो था और नहीं है, इसको जानने समझने का गणित बेहत जटिल है
ओर हमें उसे मुश्किल से समझ स्वीकार कर पाते है,
डेढ साल के बच्चे की बात क्या[1]

मृत्यु को परिभाषित न कर पाने की स्थिति को यह कविता हूबहू द्योतित करती है। लेकिन मृत्यु से उत्पन्न अवसाद का दूसरा पक्ष है जो इन पंक्तियों में व्यक्त है।

जो था उसकी याद धीरे धीरे मिटती है
जो है वह जगह घेरी जाती है इतनी कि
याद के लिए जगह नहीं बचती।[2]

जब स्मृति केलिए जगह नहीं है तो मृत्यु का कौन सा रूप रह जाता है। अशोक वाजपेयी की कविता यथार्थ से परे वाले यथार्थ और अतः यथार्थ की ओर यात्राएँ हैं।

'हल्के से' शीर्षक कविता अब तक प्रकाशित उनके अंतिम काव्य संकलन से है।

वह पत्ती हवा में हलके से काँपी
हवा उस पत्ती के पास से गुज़रते हुए हलके से काँपी
एक बच्चा उधर बैठे ठण्ड से हल्का सा काँपा
एक बूढे के लगभग मरणासन्न चेहरे पर
जीवन फिर से काँपा और शान्त हो गया।[3]

---

1. इबारत से गिरी मात्राएँ - अशोक वाजपयी, पृ. 63, प्र. सं. 2002
2. वहीं
3. कुछ रफू कुछ थिगडे - अशोक वाजपेयी - पृ. 7, 2004

यह निश्चलता और गतिशीलता को व्यक्त करने वाली कविता है। मृत्यु और जीवन को व्यक्त करनेवाली कविता भी है। यथार्थ और अयथार्थ को भी यह कविता हल्के ढंग से कुछ कह रही है। अशोक वाजपेयी की कविता दृष्टि की समस्त सूक्ष्मताओं ये युक्त ऐसी कविताएँ जीवन के अंतरंग पक्ष को लगातार परिभाषित करने का प्रयास करती है।

अशोक वाजपेयी की काव्य यात्रा में जीवन यथार्थ का पूरा वैविध्य तो है। जैसे मामूली चीज़ों से लेकर गंभीर यथार्थ तक का वैविध्य उनमें उपलब्ध है। वे कविता में अपने लोक को भी बसा पाते हैं। उसके बाद यथार्थ से परे जाने का विकल्प भी उनमें स्पष्ट होता है। उनकी मृत्यु संबंधी कविताएँ इस कारण से जन्म लेती है। इन कविताओं के माध्यम से वास्तव में मृत्यु की खोज नहीं बल्की जीवन के अर्थ की खोज उनकेलिए मुख्य है। इन अर्थों में ही कविता को अनंत यात्रा के रूप में वे देख पाते हैं।

.....🕮.....

अध्याय 5

# अशोक वाजपेयी की भाषिक सृजनात्मकता काअध्ययन

## काव्य भाषा

कविता एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है तो काव्यभाषा इस प्रक्रिया का अभिन्न घटक है। अतः काव्य भाषा का स्वरूप भी बहुआयामी एवं समय सापेक्ष होता है। सांस्कृतिक गतिविधियों के कालगत परिणामों का सही समावेश कविता हमेशा करती रहती है। मानवीय संस्कृति के अतिसूक्ष्म से लेकर स्थूल एवं प्रत्यक्ष स्थितियों का अंकन कविता में देखा जा सकता है। बहुआयामी एवं कालसापेक्ष सच्चाई का निर्वाह करनेवाली कविता में भाषा की बहुआयामी दिशाएँ परिलक्षित होती हैं। कहा जाता है कि हम अपने दैनिक जीवन की वस्तुओं को गद्य में खींचकर लाते हैं - कविता के लिए। गद्य को कविता में खींचकर लाते हैं जीवन के संगीत के लिए, संगीतात्मकता के लिए। यह तथ्य वास्तव में काव्यगत सृजनशीलता और काव्यभाषा के चरम आदर्श की ओर संकेत करता है। कविता की भाषा में, कोई एक शब्द दूसरों से तब तक सहयोग नहीं करता जब तक सभी शब्द एक दूसरे से ग्रहण करने और एक दूसरे को देने की स्थिति में न हो। गद्य भाषा से काव्यभाषा को अलग करनेवाला तत्व यह लय है। लयात्मकता में कविता के हरेक शब्द आपस में समाहित करते हैं। शब्दों की इस सहस्थिति में शब्द के बीच मौजूद मौन का भी

महत्वपूर्ण स्थान है। कविता में यह मौन भी स्पन्दित है। बीच में मौजूद मौन आगे आनेवाले शब्द के महत्व को निरूपित करते हैं, उसे स्थापित करते हैं।

काव्य भाषा का उपर्युक्त विवेचन एवं परिभाषा को काल की कसौटी में कसते समय प्रत्येक युग में रचित कविताओं की अलग पहचान सामने आने लगती है। काव्यभाषा की क्षमता काव्यानुभूति की क्षमता पर निर्भर है और काव्यानुभूति की क्षमता कवि के अपने समाज या अपने समय के ऐतिहासिक, सामाजिक यथार्थ से गहरी संपृक्ति या संलग्नता पर निर्भर है।[1] कविता भाषा की एक विधा विशेष है जिसके साथ भाषा का गहरा, अनिवार्य और अविच्छिन्न संबंध है। एक श्रेष्ठ कविता की पहचान उसकी वस्तु से नहीं, अपितु उसकी भाषा सामर्थ्य से आंकी जाती है। कविता में भाषा अभिव्यंजना के चरमोत्कर्ष पर होती है। समय की धड़कन को मापनेवाले कवि अपनी प्रवाहशाली भाषा में उसे अंकित करते हैं। एक समर्थ एवं सजग कवि हमेशा स्पन्दनमयी भाषा की तलाश करते हैं क्योंकि समय एवं कविमन के स्पन्दन को समान अभिव्यक्ति दे सकें।

भाषा जीवन से उपजती है और कविता एवं जीवन के बीच वह सेतु का काम करती है। सेतु व्यक्ति प्रक्रिया के साथ-साथ एक सामाजिक प्रक्रिया भी है। एक

---

1. 'ओर' - कविता का गद्य और काव्य भाषा - परमानंद श्रीवास्तव - जुलाई-सितंबर - पृ. 11, प्र. सं. 1991

व्यक्ति का समाज से जोड़ने के समान जीवन और कविता के बीच भाषा की वही भूमिका है। डॉ. जीवनसिंह का कथन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि दरअसल कविता शब्दकोश से न रची जाकर जीवन के कोश से रची जाती है।[1] जीवन के अनेकायामी पक्षों का उद्‌घाटन करते हुए भाषा का सार्थक विन्यास हर युग की कविता में पाया जाता है। हिन्दी कविता की भाषापरक संसक्ति हमेशा समय के यथार्थ के अनुरूप रही है। काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली को उपस्थिति के बाद खड़ीबोली में ही असंख्य काव्यात्मक, सर्जनात्मक प्रयोग हुए। भाषा की अस्मिता और भाषा की पहचान उस समय कवि का परिवेश, उनकी मनोवृत्ति के अनुसार रूप धारण करती है। लगभग साथ ही समय में रचनारत कवियों की भाषा में समानता तो है। लेकिन प्रत्येक की भाषा अपने परिवेश, प्रभाव, दृष्टिकोण, सोच-विचार और व्यक्तित्व के अनुरूप होती है। छायावादी दौर के कवियों पर यदि नज़र डाले तो पता चलता है कि प्रसाद पंत निराला और महादेवी वर्मा की भाषा अपनी-अपनी अलग पहचान की माँग करती है। समकालीन होने के कारण दो कवियों की काव्यभाषा समान नहीं है। कवियों की काव्य प्रतिभा की गहराई को हम उनकी भाषा से समझ सकते हैं। भाषा पर मात्र ध्यान देना उनकी रचनाधर्मिता को कमतर आँकना नहीं है। भाषा वह सामग्री या माध्यम है जिसमें कवि की तमाम संवेदना, विचार,

---

1. 'ओर' - काव्यभाषा : क्रियाशील जीवन से अनुराग की भाषा - जीवन सिंह - जुलाई-सितंबर - पृ. 11, प्र. सं. 1991

अनुभूति, कल्पना और मनोवृत्ति आकार लेती है। कविता मेंआकार लेने वाली सामग्री की गंभीरता एवं स्वाभाविकता का अनुभव भाषा के माध्यम से अभिव्यंजित होता है।

जैसे-जैसे खडीबोली हिन्दी की कविता का विकास होता है, वैसे-वैसे वह संस्कृत की आभिजात परंपरा से मुक्त होकर, गद्य की प्रकृति का परित्याग करती हुई मानव जाति के जीवन-व्यवहार की ओर अग्रसर होती है। समय के सच का बखान करते हुए भाषा का निरन्तर, परिवर्तन, परिवर्द्धन, एवं परिष्कार हो रहा है। विधाओं में कविता की अलग पहचान उसके कलेवर को प्रकट करनेवाली भाषा में ही है। इसलिए कविता की भाषा ओर कविता को अलग रखकर परखना नामुमकिन है। भाषा के तरल विन्यास में सांस लेने वाली कविता का अध्ययन आखिर भाषा का अध्ययन ही है।

**समकालीन कविता की भाषा**

समकालीन जीवन की बहुस्तरीयता का अंकन समकालीन हिन्दी कविता में हुआ है। इस दौर की कविता में मनुष्य की सबसे संकटापन्न स्थिति अभिव्यक्ति है। समकालीन कविता हमें बता रही है कि मानवीय संवेदना और संस्कृति खतरे में है। सत्ता और साधारण के बीच का संघर्ष आति प्राचीन काल से लेकर है। मानवेतिहास में असंख्य ऐसे काले पृष्ठ रेखांकित हो चुके है। शोषण और अत्याचार की श्रृंखला

कभी समाप्त नहीं होती है। उस श्रृंखला में नयी-नयी कड़ियाँ जोडी जा रही हैं और जंजीर का बडा-सा रूप धारण कर जनसाधारण के हाथ पैर बाँध रहे हैं। उत्तराधुनिक दौर के नव उपनिवेशवादी औजारों जैसे भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण, उपभोक्तावाद, आर्थिक उदारीकरण आदि से मानवीय संस्कृति बुरी तरह घायल होती जा रही है। जाने और अनजाने मानवीय चेतना पर आक्रमण हो रहा है। चेतना, बुद्धि, एवं विवेकशीलता तो तहस नहस करने का अमानवीय षड्यन्त्र सब ओर चल रहे है। ये सब साम्राज्यवादी साजिशों का दूसरा नाम ही है।

सब कहीं अत्याचार ही अत्याचार है। तीसरी दुनिया के राष्ट्रों का साम्राज्यवादियों द्वारा यह शोषण नया नहीं है। लेकिन सत्ताधारियों के बदलने के अनुसार शोषण और अत्याचार की भयावहता भी बढ़ती जा रही है। चेतना पर होनेवाले इस आक्रमण से मानवीय अस्तित्व विचलित हो रहे है। संघर्षरत मनुष्य में अपनी पुरानी संस्कृति के स्थान पर एक अपसंस्कृति का निर्माण हो रही है। इससे बेखबर होकर आधुनिक मनुष्य उसके अधीन में पड़कर पैर पटक रहा हैं। मानव एवं उनकी संस्कृति के ऊपर आसीन अपसंस्कृति के खिलाफ समकालीन साहित्यकार एक प्रतिसंस्कृति के निर्माण को आति वांछनीय समझने लगे हैं। इसके फलस्वरूप साहित्य प्रतिरोध का तेवर अपनाने लगा है। 'समकालीन' शब्द इसलिए गंभीर

साहित्यिक प्रतिक्रियाओं को प्रतिस्पन्दित करनेवाला शब्द है। मसलन, हिन्दी कविता में समय की गहरी पहचान निहित है।

समकालीन हिन्दी कविता में असंख्य कवि सृजनरत हैं। तीन-चार पीढियों के इन कवियों में समय के प्रति जागरूकता देखने को मिलती है. नयी कविता की व्यक्तिवादी अत्मान्वेषण के पथ को छोडकर समय की माँग को अपनी बारीकी से आत्मसात् करनेवाली समकालीन कविता की भाषा उसकी पहचान है। समयानुकूल यथार्थ को प्रत्येक कवि अपने अनुसार विश्लेषण करता है। अर्थात आस-पास की वास्तविकता से प्रतिकृत होने के लिए प्रत्येक कवि का अपना विकल्प है। धूमिल, राजकमल चौधरी, कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह, लीलाधर जगूडी, चन्द्रकांत देवताले, वेणुगोपाल, ज्ञानेन्द्रपति, मंगलेश डबराल, वीरेन डंगवाल, अरुणकमल, एकांत श्रीवास्तव सरीखे कवि राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विघटन का पोल खोलने के लिए तीक्ष्ण, प्रखर, सपाट भाषा का प्रयोग कर रहे हैं।

घने जंगलों के बीच
भूखे लोगों के पडाव में
खोलता हुआ आदतन
जिस समय माँगेगा अन्न
उसी समय पैदा होगी
कविता की जरूरत[1]

---

1. अन्न है मेरे शब्द - एकान्त श्रीवास्तव - पृ. 87, प्र. सं. 1994

अन्न और कविता का अपना सामना होना एक तरफ कविता के लोक और जनसंस्कृति के संबंध हो दर्शाता है। तो उसमें भाषा की सूक्ष्मता भी मिलती है।

समकालीन दौर में लिखी गयी कविताओं की भाषा पर दृष्टि डालना तत्कालीन समय की वास्तविक स्थिति को समझने के समान है। जीवन की बहुस्वरता की कविता होने के कारण समकालीन कविता में जीवन के अनेकायामी पक्ष बारीकियों में संगुफित हैं। जनवादी चेतना समकालीन कविता का मुख्यस्वर है। जन्म, जाति और वर्ग के नाम पर शोषित दलित के प्रति, समाज के लघुमानव के प्रति, औसत जनजाति के प्रति झुकाव जनवादी चेतना के मूल में है। लोक भाषा में लोकसंस्कृति को कायम रखने के लिए साथ ही शोषकों के प्रति अपना विद्रोह खुल्लम खुल्ला व्यक्त करने के लिए लोक भाषा का इस्तेमाल कवियों ने किया। कठोर यथार्थ का सामना करने के लिए कटुभाषा की आवश्यकता वे महसूस करते हैं।

समकालीन कविता का दूसरा सरोकार स्त्री स्वत्व की स्थापना से है। स्वत्व की तलाश करनेवाली आधुनिक स्त्री को अपनी चार दीवारी से मुक्त करने की आवश्यकता और उसकेलिए अदम्य आग्रह की अभिव्यक्ति समकालीन कविता की दूसरी प्रवृत्ति है। कात्यायनी, अनामिका, अर्चनावर्मा, अनीता वर्मा, नीलेश रघुवंशी जैसी स्त्री कवियों की एक सशक्त पंक्ति हिन्दी कविता में है। उनकी भाषिक सृजनात्मकता में एक व्यापक अनुभव संवेदित होता है। उदाहरण केलिए देखी जा

सकती है। 'इस्तेमाल' शीर्षक की कविता देखी जा सकती है। स्त्री के इस्तेमाल का इतिहास प्रस्तुत करने वाली यह कविता भाषा के माध्यम से उस अनुभव को मूर्त करती है

खरीदती है अगर दवा तो स्त्री को देखो
दर्द से ज़्यादा असरदार है उसकी कमर
तेल से ज़्यादा सुंदर हैं केश कपडों से ज़्यादा देह[1]

इस कविता में विज्ञापन की चकाचौंद के बारे में उल्लेख है। लेकिन कुछ उदाहरणों के माध्यम से स्त्री के उपयोग को भाषा के विशिष्ट प्रयोगों से संभव बनाया है।

राजनीतिक, सामाजिक धार्मिक, संस्कृतिक क्षेत्रों में होनेवाले हमलों पर प्रत्येक कवि अपने अनुसार प्रतिरोध का स्वर प्रकट करता है। आलोक धन्वा, राजेश जोशी, उदयप्रकाश, मंगलेश डवराल भागवत रावत, गिरिधर राठी, विष्णु खरे, नन्दाकिशोर आचार्य, प्रयाग शुक्ल, प्रभात त्रिपाठी, वीरेन डंगवाल जैसे असंख्य कवि समयानुकूल यथार्थ को अपनी मनोभूमि के अनुकूल प्रस्तुत करते रहते हैं। समकालीन कविता के मुख्य सरोकारों के अनूकूल उनकी भाषिक संरचना भी उल्लेखनीय है। वीरेन डंगवाल की चर्चित कविता है 'दुशचक्र में स्रष्टा' विद्रुपता का भरपूर प्रयोग करके कविता की भाषा को वीरेन डंगवाल ने तराशा है। विद्रुपता से युक्त भाषा से कई आयाम कविता में खुलते हैं। वस्तुतः कविता भगवान को संबोधित करती है।

---

1. एक जन्म में सब कुछ - अनीता वर्मा - पृ. 25, प्र. सं. 2003

प्रार्थनागृह ज़रूर उठाये गये एक से एक आलीशान
मगर भीतर चिने हुए रक्त के गारे से
वे खोखले आत्महीन शिखर-गंबद-मीनार
उंगली के चूते ही जिन्हें रिस जाता है खून!
आखिर यह किनके हाथों सौंप दिया है ईश्वर
तुमने अपना इतना बड़ा कारोबार?[1]

यहाँ ईश्वर को, सृष्टा को केंद्र में रखकर कई ऐसे सवाल पूछे गये हैं। जिन का जवाब हम आस पास से आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। कविता की भाषा की एकाग्रता में दुषचक्र के विस्तृति का परिचय होता ही है।

समकालीन दौर में जहां हमारे सभी निकटतम संसाधन भूमण्डलीकृत हैं वहाँ भाषा का भी निरन्तर अवमूल्यन हो रहा है। भाषा हमारे लिए एक मूल्य है जिसमें हमारी संस्कृति सन्निविष्ट रहती है। यदि संस्कृति पर हमला हो रहा है तो वह भाषा पर होने वाला हमला ही है।

कविता की भाषा पर उपभोक्तावादी प्रवृत्ति का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। संस्कृति साहित्य और मानव मूल्य परस्पर संबंधी है। आजकल ये सभी संकट का सामना कर रहे हैं। विज्ञापन और आधुनिक प्रिंट एवं इलक्ट्रोनिक मीडिया समाज के साथ नैतिक रिश्ते में नहीं; व्यावसायिक रिश्ते में बंधे हैं। कविता का संबंध मनुष्य

---

1. दुश्चक्र में स्रष्टा - वीरेन डंगवाल - पृ. 24, प्र. सं. 2002

के उपभोक्ता पक्ष से नहीं बल्कि उसके भावात्मक और नैतिक पक्ष से है। इसलिए कविता में स्वयमेव ही यह उत्तरदायित्व आ जाता है कि वह मनुष्य की आत्मा के नष्ट होते आयामों की पुनप्रतिष्ठा करने की कोशिश में अपनी सार्थकता का अनुभव करे।[1] लेकिन यह आसान कार्य नहीं है। इसकेलिए भाषा की खोती जा रही संवेदनात्मक प्रामाणिकता को पुनःआर्जित करना ओर उसे बहुआयामी अर्थ ग्रहण करने में समर्थ बनाना आवश्यक है। आधुनिक कवि अपने इस उत्तरदायित्व को पहचानता है और उसका मूल संघर्ष भाषा को, उसकी विश्वसनीयता को उन युक्तियों के माध्यम से लौटाने का है जिनका आसानी से व्यावसायिक इस्तेमाल नहीं हो सके।

समकालीन कवियों में अशोक वाजपेयी का विशिष्ट स्थान है। वह उल्लेखनीय इसलिए है कि अपने सारे समकालीन विपर्यय, के बरक्स वे अपनी अलग पहचान बना लेने वाले हैं। भाषा में सजगता पर उनका मुख्य ज़ोर है। कविता ही 'मेरा अध्यात्म है' कहने वाले कवि यह भी जोड़ता है कि भाषा ही मेरा अध्यात्म है। प्रचलित पथ से हटकर अपने लिए अलग पगडण्डी तय करनेवाले अशोक वाजपेयी की भाषा संबंधी दर्शन समकालीन सन्दर्भ में विशिष्ट है। समकालीन हिन्दी कविता ने पहले सपाट शैली में रचना शुरू की थी। लेकिन धीरे धीरे विधागत चरित्र को लौटाने का प्रयास समकालीन कवियों ने किया। जीवन की लय एवं संगीत को

---

1. साहित्य का स्वभाव - नन्द किशोर आचार्य - पृ. 50, प्र. सं. 2001

बचाये रखने की आवश्यकता महसूस करने पर कविता की भाषा में पुनः स्मृतियाँ, अन्तर्ध्वनियाँ, लय, संगीत आदि वापस आने लगे। क्योंकि लेखक का संघर्ष सीधा और सरल संघर्ष नहीं है। लेखक की चेतना पर तो कई जाने-अनजाने प्रभाव पड़ते ही हैं। साथ ही विज्ञापन और प्रचार में रुचि रखनेवाली शक्तियाँ भी उस पर कई प्रकार के दबाव डालती हैं। इस तरह के स्थानीय से लेकर अन्तरराष्ट्रीय स्तरों तक के कई प्रकार के प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दबावों के सम्मुख आत्म सजगता को बनाए रखना आज के लेखक के सम्मुख एक कठिन चुनौती है। भाषा की खोयी हुई या बिखरी संभावनाओं को आविष्कृत करने की चेष्टा उपभोक्तावादी अमानवीयकरण के विरुद्ध मानवीय संवेदना को, मानवीय आवेगों और अनुभवों को फिर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा का ही साहित्यिक प्रतिफलन है।

उपभोक्तावादी प्रक्रिया ने भाषा का तो अवमूल्यन किया है। साथ ही मानवीय अनुभव का भी अवमूल्यन किया है। इसमें उपभोक्तावाद के संचालक सर्वग्रासी सन्तारूप ही नहीं, वे दर्शन और विचार धाराएँ भी सहयोग करती रही हैं जो मनुष्य और उसकी चेतना के सारे कार्य व्यापारों को जड़ प्रकृति से संचालित मानती हैं। आज औद्योगिक और उत्तर आधुनिक सभ्यता मनुष्य के अनुभव की विशिष्टता को एक औसत अनुभव में बदलने के लिए सचेष्ट है। ऐसे सन्दर्भ में अशोक वाजपेयी की कविताएँ गहन एवं सूक्ष्म अनुभव का अवसर प्रदान करती हैं।

समकालीन कविता की यह भाषिक संरचना अपनी पूर्ववर्ती परंपरा से संघर्ष में के स्थापित होती है जो भाषा को फिर सार्थक बनाने की उत्कट आकांक्षा का ही परिणाम है।

## अशोक वाजपेयी की कविता की भाषिक सृजनात्मकता

अशोक वाजपेयी की कविताएँ एक भिन्न प्रकार की संवेदना, भाषा, शिल्प और तेवर प्रस्तुत करती हैं ओर वे उनके व्यक्तित्व की एक अलग और आत्म वैशिष्ट्यपरक पहचान बनाती हैं। उनका सोच, उनकी भाषा, लालित्य के साथ-साथ पवित्रता ओर दार्शनिकता का बोध देते है।[1] अब तक प्रकाशित 11 काव्य संकलनों में प्रथम से लेकर अद्यतन संग्रह की कविताओं तक में भाषा संबंधी सजगता देखने को मिलती है। अपने मूल काव्य मर्म की सार्थक अभिव्यक्ति करने में वे हैं। अर्थात् अशोक वाजपेयी के अपने काव्य सरोकार जीवन के बहुआयामी पक्षों के साथ हैं। पर वे भाषा को उदासीकृत करके ही प्रस्तुत करते हैं। उनके यहाँ भाषा की पुनप्रतिष्ठा, शब्द की रचना, शब्दों से कविता, कविता से मनुष्य को बचाये रखने की अदम्य लालसा विद्यमान है।

रचना का शिल्पपक्ष वह साधन है जिससे रचना के बाह्यरूप को सुव्यवस्थित ढंग से संवारा जा सकता है। रचनाकार अपने भावों या विचारों को जिन उपादानों

---

1. साक्षात्कार - अशोक वाजपेयी : आयाम और परिधि - शिवकुटीलाल वर्मा - पृ. 391, जनवरी-मार्च 1995

की सहायता से अभिव्यक्ति देता है वे सब शिल्प पक्ष या संरचना पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। शिल्प वस्तु से कोई अलग संभावना नहीं है। वह वस्तु का अभिन्न अंग है या वस्तु ही है। प्रायः अध्ययन की सुविधा के लिए अलग अलग पक्षों के रूप में कविता के इन कुछ पहलुओं को देखा जाता है। सुविधावादी अध्ययन में भावना को अलग से देखा जाता है, लेकिन वह ऐसा नहीं है। भाषा शिल्पपक्ष से तथा वस्तुपक्ष से संबंधित कविता की जैविक स्थिति का द्योतक पक्ष है।

अशोक वाजपेयी की कविताओं का एक मूख्य सरोकार भाषा का है। भाषा के अवमूल्यन के सन्दर्भ में भाषा को सुरक्षित रखने का आग्रह उनमें बलवती दिखायी पड़ता है साथ ही अपने प्रारंभिक कविता-संग्रह से लेकर शब्द को रचते गढ़ते दृष्टिगत होता है। असंख्य प्राकृतिक दृश्यों के विन्यास के साथ प्रतीकों बिम्बों के ताने-बाने में स्मृतियों ओर अन्तर्ध्वनियों को कविता में जीवन्त बनाने का उपक्रम प्रारंभ से लेकर उनमें विद्यमान है। कविता एक ओर भाषा में जीना है तो दूसरी ओर भाषा की स्मृति है। अगर अन्तर्ध्वनियाँ न हो तो भाषा का कोई संयोजन कवितायें नहीं हो सकता। लय अन्तर्ध्वनि का ही प्रकार है।[1] शब्दों की सर्जनात्मकता से समाजिक होने का आश्वासन कवि पाता है क्योंकि शब्दों के द्वारा समय को, छोटे सच को खराब न होने का जतन कर सकता है। 'वसन्त के लिए एक कामना'

---

1. तिनका तिनका-भाग-1 - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 10, प्र. सं. 1996

शीर्षक कविता की पंक्तियां है कि उत्सव की लपेटों से नगर जल रहा है। मेरे मित्रों की आँखें सूखकर चट्टानों के काले टुकड़े बनती जा रही हैं -

सिर्फ मेरे हाथ है
जो भाषा संभाले हैं
सिर्फ मेरे होंठ है
जो गान थामे है
धुएँ से आग से मुझे बचाने दो
वह सुलगी हुई भाषा ओर
वह पिघलता हुआ संगीत[1]

अर्थ संभावनाओं के प्रति जागरूकता बचपन से लेकर अशोक वाजपेयी में परिलक्षित होता है। उनकेलिए कविता में शब्द रचते गढ़ते भर हैं। लेकिन यह भी स्वीकार्य है कि कवि कविता में शब्दों को जानबुझकर नहीं लाते। अनजाने ही भीतर से कई शब्द निकलकर आकार लेना शुरू हो जाता है। भाषा की निर्बाध सृजनात्मकता कोमल, पवित्र काव्यसंवेदनाओं को लेकर सार्थक बनती है।

आसमान के पास दिल नहीं है
पेडों के पास बाँहें नहीं है
जिससे बात कर सकूं
मेरे पास एक दिल है

---

1. शहर अबयी संभावना है - अशोक वाजपेयी - पृ. 37, प्र. सं. 1966

जो किसी बच्ची के साथ रहना चाहता है
मेरे पास दो बाँहें हैं
जो लोगों को घेर लेना चाहती हैं
मेरे पास भाषा है
जो किसी युवा कवि के हाथ रचना चाहती है[1]

भाषा को संभाले हम एक युवा कवि पूरी महत्वाकांक्षा के साथ उम्मीद के साथ अपने समय के साथ खडे हो रहे हैं। प्रथम संग्रह में माँ पर, बालसखा से अचानक भेंट की याद में, शमशेर बहादुर सिंह की कविता पर, अली अकबर खाँ के सरोद-वादन पर, खजुराहों जाने से पहले लिखी गयी कविताओं में अनुभव की ऐसी भंगिमा का समावेश हुआ है जो प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु गहन निरीक्षण परीक्षण का परिणाम है। 'कविवक्तव्य' शीर्षक कविता में

लौटेंगे हम
तितलियों की तरह नये शब्द लिये
और ये लोग / ये धूप / ये सड़कें
ये दृश्य
डूब जाएँगे शाम के एक मद्धिम संगीत में
हम लैटेंगे....[2]

---

1. शहर अब भी संभावना है - अशोक वाजपेयी - पृ. 73, प्र. सं. 1966
2. वहीं - पृ. 93, प्र. सं. 1966

कवि जीवन के संगीत की लय में, सुरों में लिपटकर डूबकर बैठना चाहते हैं। सड़कों, कमरों, ऑफिस, पाँकों होटलों में झीखती भीड़ की तुलना में कवि प्रकृति के संगीत में, उसकी लय में डूबना चाहते हैं। लेकिन भीषण समय के इस दौर में भाषा का मूल्य कहीं गिर गया है। निर्लज्ज क्रूरता एवं नृशंसता के बढ़ने से चिंतित कवि उन नृशंस कार्यव्यापारों से कलंकित शब्दों को बच्चे से बेखबर शब्द कह रहे है। उस शब्द को कवि किसी बच्चे के पास रखना चाहते हैं ताकि सिर्फ इतने से वह शब्द चमक जाएँ और ऐतिहासिक कलंक को धो डालकर पवित्र हो सकें। शब्दों की पुनःप्रतिष्ठा करने का कवि- मन का प्रयास संभावनापूर्ण है क्योंकि वह एक पवित्र कर्म की इच्छा मात्र नहीं है बल्कि एक विशिष्ट और नयी संस्कृति की वैकल्पिकता रचना है।

बच्चों से बेखबर
बेखबर उन शब्दों से
जो मैं चुपचाप
उसके पास रख देता हूँ
अपने प्रेम में / मेरे शब्द
जो उसकी उदास गरीबी को
एक चमक भर दे सकते है
कोई अर्थ नहीं।[1]

---

1. शहर अब भी संभावना है - अशोक वाजपेयी - पृ. 107, प्र. सं. 1966

क्योंकि कवि पहचानते हैं शब्द अब इधर नहीं हैं। 'एक पतंग अनंत में 'शीर्षक कविता की प्रतीकात्मकता उत्कृष्ट है। बच्चे जिसप्रकार अपने आकश चढ़ती पतंग को अनंत के पास तक पहूँचाना चाहते हैं, उसी प्रकार कवि भी अपने शब्द को पवित्रता के या उस अनंत के पास पहूँचाना चाहते हैं। माँ बाप, बहिन आदि अन्तरंग जनों की मृत्यु से उत्पन्न अवसाद कवि को शब्दों पर भरोसा रखने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए कवि अपने शब्दों और भाषा को, अनंत के पडोस में विलीन होना उचित समझते हैं।

हवा डूबी हुई है
एक नीली, आर्द्र सुन्दरता में
और धूप ने अभी-अभी
विस्मय से
अपने सुकुमार होने को पहचाना है
कविता से बहुत दूर
खिली हुई वह
एक युवा शब्द है[1]

भाषा के तरल विन्यास में भाषा का ही अन्वेषण उनकी कविताओं में बीच बीच में पाया जाता है। समय की वास्तविकता जितना भी भीषण क्यों न हो, प्रकृति का सच जो सुन्दर है वह अब भी बचा हुआ है। हवा अपनी आद्र सुन्दरता के साथ डूबी हुई

---

1. एक पतंग अनंत में - अशोक वाजपेयी - पृ. 155, प्र. सं. 1984

है। धूप ने अभी-अभी अपनी सुकुमारता को पहचान लिया है। हवा और धूप के समान सुन्दर सच बनकर युवा शब्द है। यह युवा कवि अपने शब्दों के ज़रिये समाज से विलुप्त हो जानेवाले सच को सुरक्षित रखना चाहते है। जब आकाश चिथडों का बेसहारा चंदोबा बन चुका है और ओझल होने वाली नदी में सूखी रेत, सडी काई और कुछ हड्डियों की तरह पृथ्वी बची पड़ी है। स्वयं सृजित कारागार में अपने को कैद रखे हुए आधुनिक मनुष्य कहाँ आश्रय पायेंगे है? किसके द्वार पर दस्तक दे सकते है? हमें घर लौटाने लायक प्रतिध्वनि कहाँ से आएगी? कवि मन सन्देह में है 'थके हारे, पृथ्वी को इस दशा से कैसे बचाया जा सकता है

आत्मा के अंधेरे को
अपने शब्दों की लौ ऊँची कर
अगर हरा सकता
तो मैं अपने को / रात भर
एक लालटेन की तरह जला रखता/
अगर इतने से काम चल जाता[1]

उपनिवेशवादी दौर में मानवीय चेतना पर और संस्कृति पर, प्रकृति पर किये जाने वाले अत्याचार से अमानवीयता की लहरें सर्वत्र फेल गयी हैं। मनुष्य के भीतर और बाहर व्याप्त इस अंधेरे को कवि शब्दों की किंचित रोशनी को ऊँची कर हराना

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी - पृ, 223, प्र. सं. 1986

चाहते हैं। यदि शब्दों की रेशनी से यह संभव है तो कवि स्वयं एक लालटेन की तरह जलने के लिए तैयार हैं ताकि दुनिया के कोने-कोने में व्याप्त अंधेरा कुछ मिट सके।

कुछ भी तय नहीं है
तय सिर्फ इतना है कि
शब्द है
उनकी जगह है
और धड़कता हुआ जीवन है हम है
और पल पल बदलते झरते हुए भी
अक्षर है।[1]

शब्दों पर अन्तहीन उम्मीद के साथ विश्वास करनेवाले कवि यह कहना चाहते है कि शब्द के लिए अब भी जगह बाकी है, धड़कता हुआ है, उसे जीवन्त बनानेवाले मनुष्य है। पल पल बदलते झरते अक्षर हैं। अक्षर के बदलने पर भी अक्षर और भाषा की असमाप्य शक्ति पर कवि भरोसा रखते हैं शब्दों पर इस असमाप्य शक्ति पर भरोसा रखनेवाले कवि इसलिए कहते हैं

न बच्चा रहेगा
न बूढ़ा
न गोंद न फूल, न दालान

---

1. अगर इतने से (तिनका तिनका-भाग-1) अशोक वाजपेयी, पृ. 233, प्र. सं. 1986

रहेंगे फिर भी शब्द
भाषा एकमात्र अनंत है।[1]

कविता जीवन को बचाती है। मृत्यु एक शाश्वत सत्य है। मनुष्य के इस दुनिया से लुप्त हो जाने के बाद भी कविता मनुष्य को बचाती है। कविता का यह बचाव भाषा के माध्यम से है। कविता और भाषा पर कवि का झुकाव कभी थमती नहीं।

शब्द नाचना है मौन को
मौन को
संक्षिप्त अनंत में ढालते हुए
मौन में / शब्द बोलते हैं
शान्त होते हैं।[2]

मानव जीवन के बुनियादी सरोकारों को शब्द हमेशा संभालते हैं। बुनियादी समस्याओं के साथ ही साथ जीवन के दूसरे पक्ष को जो लगभग अलक्षित किया जाता है, कवि उसे सहेजनेवाले है। मृत्यु, प्रेम, अवसाद, जिजीविषा आदि भी समय का पक्ष है। समय के इन्हीं पक्षों को अलक्षित न किया जाय। इस आग्रह का बखान कवि की बहुत सारी कविताओं में हुआ है। लेकिन वे यह भी पूछना चाहते हैं कि शब्दों की जगह कहाँ है? दोपहर की कड़ी धूप में मुरझाने के लिए अभिशप्त सुबह की हरी

---

1. अगर इतने से - अशोक वाजपेयी - पृ. 235, प्र. सं. 1986
2. वही - पृ. 268, प्र. सं. 1986

पत्तियों की हंसी के समान पीपल की छाँह में माँ केलिए ललकते बच्चे के उत्साह के समान, और प्रतीक्षा में निर्विकार बैठे बुढे जहाँ हैं, उन्हीं से घेरे हुए जगह में शब्द को कहाँ रखे जा सकते हैं। भाषा पर भरोसा और शब्द से उम्मीद रखनेवाले कवि विचलित सन्दर्भ में अपना आग्रह प्रकट कर रहे हैं। शब्द में अदम्य शक्ति है कि पत्तियों के पीलेपन के पार उसमें निहित हरियाली को लाने की। लेकिन यह सत्य है कि उसे लौटा नहीं सकते। एक बूढे को मृत्यु से खींचा नहीं जा सकता है। शब्द से कवि की उम्मीद का उल्लंघन कर हमें अतिरंजित कल्पना की दुनिया में नही ले जाते हैं। एक सामान्य संभावना पर कवि विश्वास करते हैं। सच को परिवर्तित करना शब्द का काम नहीं। शब्द में निहित सुन्दरता की पहचान लौटाने का सभियों को आस्वाद्य बनाने का आग्रह इस कविता में है।

शब्द ले नहीं सकते किसी की जगह
याद भर दिला सकते हैं
कि जगह थी, कि जगह है,
कि जगह होना चाहिए
कि हरी जगह सूखकर पीलीं पड़ गई है
कि जो जगह लिये है
उसे जगह देना चाहिए।[1]

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 330, प्र. सं. 1989

शब्द किसी की जगह लेते नहीं हैं। बल्कि आनेवाली पीढ़ी को याद दिलाते हैं कि इधर अमुक के लिए जगह थी, यह आगे भी है, होनी चाहिए। शब्दों आखिर हम सब के लिए जगह खोजते - बनाते है। सारी दाँवपेंच और धकापेल के बावजूद जगह बचा रखते है। यदि कहीं किसी को अपनी हैसियत से नीचे गिराया जाता है तो शब्दों में इतनी क्षमता है कि वह उसे वहाँ से उठाकर सही स्थान में बिठाते हैं। शब्द संबंधी उनकी यह मान्यता कवि की समूची कविताओं और उनमें विन्यस्त शब्दों के साथ जोड़कर अध्ययन करना चाहिए। असंख्य ऐसे शब्द बिंब हमें मिल जाते हैं जो किसी सच को बचाने के लिए कोशिश कर रहे हैं। शब्द का थल और काल की पहचान इधर मौजूद है। इस कोशिश का कभी-कभी एक लडाई के रूप में कवि अनुभव कर रहे हैं।

इन सबको सहेजकर
कविता बनाता हूँ
संसार की नश्वरता के विरुद्ध
अपनी लड़ाई में,
शब्दों की अक्षरता से,
एक मोर्चा। कुछ देर के लिए सही
जीत जाता हूँ।[1]

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 337, प्र. सं. 1989

शब्दों की असमाप्य शक्ति पर विश्वास रखने वाले कवि उन्हीं शब्दों को अपनी इच्छाओं और उम्मीद को सुरक्षित रखने के लिए हाथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। क्योंकि कवि के अनुसार कविता जीवन का उत्तर जीवन है। कविता जीवन को बचाती है। हमारे इस दुनिया पर न रहने पर भी, हमारे ओझल हो जाने के बाद भी इस दुनिया में हमारे रहने का निशान तो बचेंगे, स्मृतियों और अन्तध्वनियों की शाब्दिक अभिव्यक्ति के माध्यम से। इसलिए कहना उचित है कि कविता अतिजीवन का संगीत है।

संसार को एक व्यापक कवितानुभव बनाने की इच्छा अशोक वाजपेयी में प्रबल है। इसकेलिए कवि को चाहिए पूरी पृथ्वी, अपनी वनस्पतियों समुद्रों और लोगों से घिरी हुई पृथ्वी। एक छोटा सा घर काफी नहीं है। कवि विशाल घर की परिकल्पना कर रहे हैं। इस विशाल घर को सबकुछ समाहित करने की क्षमता हो। क्योंकि वह प्राकृतिक शक्तिशाली उपादानों और उसके स्वाभाविक प्रभाव पर निर्मित एक घर है। उस विशाल घर को एक भरा पूरा आकाश चाहिए। एक पूरा का पूरा आकाश। अपने असंख्य नक्षत्रों और ग्रहों से भरा हुआ।

थोडे से शब्दों से नहीं बना सकता
मैं कविता
मुझे चाहिए समूची भाषा
सारी हरितिमा पृथ्वी की

सारी नीलिमा आकाश की
सारी लालिमा सूर्योदय की[1]

शब्दों से उम्मीद कभी थमती नहीं। तमाम चकाचौध और तबाही के बीच में भी शब्द में अर्थ भंगिमा और उसकी गहराई को कवि अनुभव करते हैं। कविता में भाषा के उपयोग को लेकर अशोक वाजपेयी की स्पष्ट मान्यताएँ हैं। कविता, भाषा, अनुभव, स्मृति, कल्पना, रहस्य, आश्चर्य आदि से रची जाती है और हर बार अप्रत्याशित कृति होती है।

अशोक वाजपेयी की कविताओं में कई प्रकार से उनकी मातृस्मृति विन्यसित होती है। यह भी कविता वस्तु की एक विशेष प्रवृत्ति है। लेकिन यह स्मृति का वस्तुपक्ष, कविता के शिल्प को गहराने में, उसकी अर्थध्वनियों को बहुआयामी बनाने में सहायक है। 'फिर घर' शीर्षक कविता में यह संवेदना स्पष्ट है।

माँ को कैसे पता चलेगा
इतने बरसों बाद
हम फिर उसके घर आये हैं
कुछ पल उसे अचरज होगा
चेहरे पर की धूल कलुष से विभ्रम भी
फिर पहचानेगी
हर्ष विषाद में डूबेगी उतराएगी।[2]

1. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी - पृ. 339, प्र. सं. 1989
2. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 46, प्र. सं. 1997

माँ बचपन से लेकर उन्हें आविभूत करती रही हैं। इसलिए यह मातृस्मृति बार-बार उनकी कविताओं में दर्ज होती रहती है। इस तरह यह तत्व उनकी कविता के वस्तु सत्य एवं रूपपरक सौष्ठवता को गहराने तथा उसकी आस्वादनक्षमता को बढ़ाने में सहायक हो जाते है। भाषा की संरचना में भी उनकी सृजनात्मकता का आभास देख सकते हैं। अन्ततः वह भाषा को अपने लयात्मक संयोजन से वहाँ ले जाता है, जहाँ वह पहले न गया हो; कविता में भाषा माध्यम नहीं अनुभव है, कविता अपने को, अपने होने की सच्चाई को जानने की एक प्रक्रिया है पहले से जाने हुए को कविता में ढालने का उपक्रम नहीं।[1]

समकालीन दौर के अधिकांश कवि जीवन संघर्ष से इतना लगा हुआ है कि वे अन्य किसी काव्य सत्य पर सोचने का उपक्रम ही नहीं करते हैं। उनकी कविता में शब्द सिर्फ विपुलता और परिष्कार में ही नहीं अनेक स्तरों पर एक साथ तात्कालिकता में प्रकट होता है। अशोक वाजपेयी भाषा के ज़रिए तात्कालिकता को व्यक्त करते तो हैं; पर उसके उत्तरपक्ष की ओर भी झाँकते हैं -

एक दिन ऐसा शब्द आयेगा
जो पहले कभी नहीं था
कहीं भी

1. आधुनिक कवि - अशोक वाजपेयी : भूमिका - पृ. 19, प्र. सं. 2001

न कविता में, न कथा में
न कोष में, न किसी के मन में।
वह आयेगा सामने की गली से
पेड़ों की झुरमुट से
छाँह में सुस्ताकार पर
धूप में तमतमाते हुए।[1]

शब्द से उम्मीद रखने के सिवाय कवि के पास और कोई चारा नहीं। क्योंकि शब्द एक सहारा है, वह एक मार्ग है। शब्द का अपना एक इतिहास है। शब्द विभिन्न साहित्यकारों की संवेदना की समग्रता का अपना एक इतिहास रचता है। लेकिन जब कभी उस शब्द का उपयोग एक नये कवि कर रहा है तो वह उनके अपने सामने वाली गली से आयेगा। पेड की झुरमुट से छाँह में सुस्ताकार आयेगा। धूप में तमनमाते हुए अपनी प्रखरता के साथ। सृजन के क्षेत्र में प्रवेश करते ही अशोक वाजपेयी ने पहचाना या कि कविता शब्दों का मामला है। इसलिए शब्द के प्रति सजगता उनकी आदत सी हो गयी है। भाषा में उनका पकड 'बेजोड' है। उनके यहाँ ऐसा कोई भी शब्द नहीं है जो अप्रासंगिक हो। सचमुच उनके यहाँ शब्द रचते खिलते हैं - अपने पास - पडोस परिवार, अवसाद, उम्मीद में आमग्न होकर

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 45, प्र. सं. 2000

केलि के बाद शय्या में पड गयी सलवटों सा
मृत्यु के बाद द्रव्य स्मरण सा
आश्वरोहियों से रटे जाने के बाद
हरियाली ओढकर दुबली पडी धरती सा
गर्मियों में सूख गये झरने के चट्टानों के बीच
जड़ों में धँसी नमी सा।[1]

ऐसे रचने बसने पर भी ऐसे शब्दों का बहाव उनके यहाँ सहज, तथा लययुक्त रहा है। वह प्रकृति का कोमल वर्णन हो या मानव की केन्द्रीय सचाई का अंकन हो शब्दों का बहाव हम देख पाते है। 'साक्षात्कार' पत्रिका के जनवरी-मार्च अंक में मदन सोनी से हुई बातचीत के बीच उन्होंने कहा था कि शब्द के प्रति मैं अत्यन्त सजग कवि हूँ। इस शब्द को मैं मनुष्य का महानतम आविष्कार मानता हूँ। शब्द अजेय और अक्षत है। शब्द एकमात्र अकाट्य मानवीय उपस्थिति है।[2] उनके यहाँ शब्दों में मानवीय उपस्थिति की अवधारणा उनके अपने समय तक सीमित नहीं है। उनके लिए पुरखे भी वर्तमान है। पूर्वज और अतीत उनकी कविता की अनिवार्य उपस्थिति है। इसलिए वह बीच-बीच में अपनी कविताओं में शब्दों द्वारा पूर्वजों की उपस्थिति दर्ज करते हैं। साथ ही उनकी कविता में शब्द स्मृति या कल्पना बनकर जीवन को बचाना चाहते है

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी, पृ. 83, प्र. सं. 1991
2. साक्षात्कार अंक 86 - जनवरी-मार्च, पृ. 56, प्र. सं. 1995

तुम मेरा रूप हो / वह शब्द
जो मुझे मुक्त करता है / अपने जन्म, मृत्यु से
देवता उठाते हैं रूपक / और ले जाते हैं
अपने दिव्य शब्द में / अपनी पृथ्वी पर
हम बचे रहते है / अर्थ की तरह दग्ध और दीप्त
और भाषा के विकास में अकेले।"[1]

अन्ततः उन्होंने अपनी कविता में भाषा को याद करने की कोशिश की है। उनके अनुसार शब्द एक रहस्य भी है, एक वरदान भी है, एक बाधा भी है, एक सहूलियत भी, कवि का बुनियादी काम इन शब्दों से जुझना है।[2]

अशोक वाजपेयी प्रकारांतर से एक शहरी कवि है। उनका बचपन सागर शहर में बीता। वहाँ खड़ीबोली का प्रयोग था। लेकिन अशोक वाजपेयी की मातृबोली बुन्देलखण्डी थी। लेकिन उसकी कोई स्पष्ट छाप उनकी कविता में नहीं है। बाद में जब इस बुदेलखंडी के प्रति उनका आकर्षण बढा तब बुन्देली जीवन से दूर रहने के बावजूद वे वहाँ की कई अन्तर्ध्वनियों को सहज रूप से आत्मसात् करने लगे। उन्होंने सीधे उसके कई शब्दों का प्रयोग बार-बार अपनी कविता में इस्तेमाल भी किया - 'उठंग', 'बरजना', 'भुरकस' आदि-

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - रूपक - पृ. 82, प्र. सं. 1991
2. साक्षात्कार जनवरी-मार्च अंक 86 - पृ. 57, प्र. सं. 1995

रेल के भागते डिब्बे से दो कविताओं और
प्रेस के अंधेरे कमरो तक वह शब्द,
बुन्देली का खडीबोली में पहूँचा और रम गया
कोश तक उसे कोई नहीं ले गया
और उसे पता भी नहीं था कि कविता के
पहले कोश में जाना चाहिए। खिडकी के
बाहर चमकतार अंधेरा था। है। हो सकता है।[1]

मातृबोली की असीन क्षमता पर कवि विश्वास रखते हैं। जानबूझकर ऐसे शब्दों को कविता में लाकर गहन एवं सूक्ष्म संवेदना की अभिव्यक्ति वे कर रहे हैं। उन शब्दों के प्रचार के लिए कवि कोश में उसे लेने के बारे में कह रहे हैं। इन शब्दों के प्रयोग के पीछे नये शब्द की अर्थगरिमा को पकड़ने की इच्छा के साथ ही साथ माँ की करुणा, और उसकी ओर झुकाव भी क्रियाशील है।

संगीतकार कुमारगंधर्व के लिए विदागीत में सुरों और लयों का समावेश शब्दों के द्वारा देखने को मिलता है। एक प्रयोगधर्मी समर्पित संगीतकार का गाना सुननेवाले को कितना मोहित कर देता है। श्रोता अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करने लगता है। इस आनन्द को कविता में अशोक वाजपेयी उतारते हैं।

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 127, प्र. सं. 1991

यह अभिषेक का समय है
जीने के धूल धक्कड
मैल कलुष को तजने का
समय
शब्द को/सुधर विन्यास को
छन्द प्रास को / प्रणति की तरह
अज्ञात के सामने अर्पित करने का
समय[1]

संगीत की काव्यात्मक अभिव्यक्ति, शब्दों में संगीत को उभारने की रीति को, हिन्दी कविता में इसके पहले किसी ने विन्यसित नहीं किया है।

पृथ्वी की नामहीनता में दफन होने को नहीं
खुले आकाश के नीचे अस्थि-अस्थि जलने की
प्रतीक्षा करते हुए
अपनी कविता के लिए शब्द
शब्दों केलिए असमात्य पवित्रता
पवित्रता के लिए कोई भरा पूरा चहचहाता घर
और अपने कुछ दिन और बचे रहने की युक्ति खोज रहा हूँ[2]

---

1. बहुरि अकेला - अशोक वाजपेयी - पृ. 195, प्र. सं. 1992
2. अविन्यों - अशोक वाजपेयी - पृ. 239, प्र. सं. 1995

'अविन्यों' नामक संग्रह के 'मुझे शब्द चाहिए शीर्षक कविता में शब्द संबंधी कवि का पूर्वग्रह पुनः अभिव्यक्ति पा रहा है। इतने सालों से शब्दों पर अपना भरोसा रखनेवाले कवि थक नहीं गये हैं।

मुझे शब्द चाहिए
यह उम्मीद कि वे मेरे बाद भी रह जाएँगे।
कुछ समय
मुझे चाहिए बीतनेवाली नहीं खिलनेवाली धूप
प्रार्थना नहीं पुकार
चुप्पी नहीं चीख
सिसकियाँ, आँसू, हंसी
मुझे ऐश्वर्य नहीं शब्द चाहए।[1]

शब्द के प्रति असमाप्य आग्रह के पीछे कवि के जिजीविषा का, अनंत को छूने का, छोटे सच को खराब होने से बचाने का आग्रह दृष्टव्य है।

**कविता के विकल्प**

'कहीं नहीं वहीं' शीर्षक संग्रह को चार भागों में कवि ने विभाजित किया है। इसमें चौथा भाग 'मुक्ति' शीर्षक से है। इस 'प्रयोग' के पीछे कविता का एक विकल्प प्रस्तुत करना कवि का मकसद है। इसे काव्य व्यवस्था के रूप में विश्व साहित्य

---

1. अवन्यों - अशोक वाजपेयी - पृ. 240, प्र. सं. 1995

लगभग स्वीकार कर चुका है। विदेशी भाषाओं में लिखनेवाले गद्यकवि संपूर्ण पारंपरिक छन्दों को स्वतन्त्र सौन्दर्य प्रविधि में निपुणता के साथ ला रहे हैं। धीरे-धीरे वे लोग छंदों के विस्तृत मंच से उतर कर विस्तृत मैदानों की ओर चले। बॉदलेयर, मलार्मे, रेम्बो जैसे कवियों ने गद्यकविता को अपनाया। कविता के इतिहास में यह बहुत बडी घटना है। 'आधुनिकता' के आरंभ का अनिवार्य चिह्न जैसे पहले सबकुछ का माध्यम पद्य था, वैसे ही अब सब कुछ का माध्यम गद्य था, कविता का भी। तब से आज तक गद्य कविता ने लगातार कवियों को खेलने केलिए विस्तृत मैदान प्रदान किया है। इसके पीछे निहित मूल भावना यह रही कि छन्द, तुक तथा लय की सरणियाँ कविता के बाहरी उपकरण हैं। इनसे उत्पन्न संगीत काव्येतर है। जबकि आवश्यकता है भाषा के निजी संगीत के आविष्कार की। प्रत्येक शब्द का अपना ध्वनिमान या संगीत है तथा शब्दों का सुसंयोजित समुच्चय एक विशेष संगीत की सृष्टि करता है जो उसी में अन्तर्निहित है और जो इंगित भावों का समतुल्य है। प्रत्येक भाव की अपनी लय होती है। इस विचार से प्रेरित होकर गद्य कविता ने अपना मार्ग निश्चित किया।[1] गद्य कविता की यह स्वीकृति समकालीन हिन्दी कविता में भी हुई है।

---

1. बहुवचन - 'गद्य कविता' - अरुण कमल - पृ. 87

अशोक वाजपेयी ने कविता के विकल्प में गद्यकविता लिखी है। कविता के शिल्प का यह प्रयोग समकालीन दौर में इने-गिने कवियों में ही उपलब्ध है। अशोक वाजपेयी के पहले रघुवीर सहाय ने यह प्रयोग किया था। उन्हीं से प्रेरित होकर अशोक पाजपेयी ने कुछ कविताएँ गद्य कविता के रूप में लिखी थी। 'कहीं नहीं वहीं' संग्रह में जो गद्यकविताएँ हैं वे शब्द और भाषा में उनकी पकड को प्रतिष्ठित करती हैं, साथ ही उनमें भाषा का ताज़ा विन्यास है और शिल्प की अचूक परिपक्वता है। कुछ इसतरह का भाव कि अब कवि कुछ भी याने जो चाहे वह कहने का सामर्थ्य पा गया है।

> हमारा डेरा लुट चुका है। कुछ भी बाकी नहीं रहा, जिस
> हाकिम ने लूटा उसका हक रहा होगा। हम उसकी
> शिकायत करते नहीं आए हैं। हमें पता है कि डेरे रोज़-ब
> रोज़ लूटते रहते है - यही यहाँ का रस्मोरिवाज़ है।[1]
>
> * * * * *
>
> बहरहाल, खिड़की के बाहर अन्धकार था। लीजिए, वह छुट
> गया इस सपाट गद्य से हालाँकि वहीं जन्मा था।
> खिड़की के बाहर चमकतार अँधेरा था। है। हो सकता है।[2]

---

1. कहीं नहीं वहीं - अशोक वाजपेयी - पृ. 150, प्र. सं. 1991
2. वहीं - पृ. 137, प्र. सं. 1991

अशोक वाजपेयी के अनुसार भाषा का घेराव बहुत बडा है। प्रायः हर क्षण वह हमें घेरती रहती है। कविता भाषा की उस घेराव से मुक्ति है। भाषा से नहीं। भाषा में मुक्ति है। अर्थात् कवि भाषा में जीवन्त संवेदनाओं को उतारते हैं। बिना जीवन की कविता संभव नहीं है न बिना भाषा के। बल्कि कविता भाषा का जीवन है। इस अर्थ में कविता भाषा में जीने की एक विधि है।

'दस्तावेज़' पत्रिका में श्री ओम निश्चल के साथ की एक बातचीत में उन्होंने बताया है कि 'भाषा ही मेरा अध्यात्म है। इसप्रकार 'आलोचना' 'पूर्वग्रह', 'समास', 'बहुवचन', जैसी पत्रिकाओं के मूल में भाषा संबन्धी उनका पूर्वग्रह स्पष्ट है। भाषा के बहिरंग और अन्तरंग परिष्कार के कारण अशोक वाजपेयी कविता समकालीन दौर में अतिरिक्त ढंग से सूक्ष्म है।

.....🕮.....

# उपसंहार

प्रत्येक युग में कविता को लेकर यह प्रश्न रहा है कि कविता क्या है? प्रत्येक युग के कवियों और विचारकों ने कविता क्या है वाले प्रश्न केलिए अपने-अपने उत्तर दिए हैं। पूर्वयुगीन मनीषियों के उत्तर भले ही आज के समय में पूर्णतः अनुकूल न दिखायी पडे फिर भी उनमें कविता के कुछ शाश्वत पक्षों पर अवश्य प्रकाश डाला गया है। परंतु प्रश्न का अंत नहीं हुआ। यह सिलसिला ज़ारी रहा है। इसलिए आज के कवियों और विचारकों ने भी अपनी कविता संबंधी राय दी है। वक्तव्यों के रूप में ही नहीं कविता संबंधी प्रतिक्रिया कविता के रूप में भी अवतरित हुई है। इस कार्य ने कविता में सूक्ति-प्रमुखता को स्थान दिया। जो हो, आज हमें कविता संबंधी गंभीर विचारों की असुलभता नहीं है।

समकालीन हिन्दी कविता अनेक प्रश्न हमारे सामने अवतारित करती है। इसका कारण यह है कि कविता के क्षेत्र में कोई हल्का सा विचार नहीं रह गया है। समकालीन दौर में यह तथ्य स्वीकृत है कि कविता गंभीर कर्तृत्व की परिणति है। कोई भी हल्कापन या सरलीकरण कविता के क्षेत्र में वर्ज्य माना गया है। इसका कारण यही है कि कविता ने अपनी संस्कृतिक भूमिका निभाना शुरु कर दिया है।

कविता को लेकर इसलिए गंभीर विचारों के उत्पन्न होने के साथ-साथ कविता-लेखा अपने आप में एक गीभर कृति कर्म भी माना गया है। समकालीन दौर की यह एक विशिष्टता है।

हिन्दी की समकालीन कविता वैविध्यमय है। कविता में एक ही धारा कार्यरत नहीं है बल्की बहुविध धाराएँ कार्यरत हैं। इसकी प्रेरकशक्ति कविता की प्रयोगपरकता नहीं है। समय की जटिलता उसके कारक तत्व हैं। जटिलता को परिभाषित करना कठिन कार्य है। अतः जटिलता की गहराई को शब्दबद्ध करने के कार्य में लगी हुई कविता कई तरह से इस जटिलता को जाँचती परखती है। अतः कविता का वैविध्य युक्त होना सहज साध्य तथ्य है।

समकालीन हिन्दी कविता की सबसे श्रेष्ठ प्रवृत्ति कौन सी है? इसका एकमात्र जवाब ढूढ़ना और देना मुश्किल है। फिर भी इधर की कविताओं ने अपना लोक रचा है। प्रत्येक कवि केलिए यह लोक मामूली सान्निध्य नहीं रहा। वह उसकी कविता की वह वास्तविकता है जिसके अभाव में समय के सरोकारों का चिह्नित होना कठिन है और सांस्कृतिक भूमिका का उद्‌भासित होना मुश्किल लोक के कई रूप कविता में मिलते हैं। नागार्जुन का लोक और युवा पीढ़ी के कवि एकांत श्रीवास्तव के लोक में पर्याप्त अन्तर है। स्त्री कविता ने अपने ढंग से अपने लोक का सृजन किया है। अशोक वाजपेयी ने अपने आस पडोस को अपना लोक बना

लिया। तात्पर्य इतना ही है कि समाकलीन कविता ने अपना एक धरातल सृजित किया है जो हमारे भावों और संवेदनाओं से गहरे अर्थ में जुडा है। उसने हमारे कठिन समय में इतना सिद्ध तो किया कि लोक के अभाव में कविता की सार्वजनीनता की बात नहीं की जा सकती। कविता ने परोक्षतः यह भी रेखांकित किया कि लोक ही वैश्वविक है। इस समकालीन दृष्टि ने वैश्वीकरण के दौर में कविता को सांस्कृतिक विघटन के बचा लिया है।

उपरोक्त सूचित है कि समकालीन हिन्दी कविता वैविध्यमय है और कविता के भीतर से प्रवाहित धाराएँ अनेकानेक हैं। अशोक वाजपेयी समकालीन दौर के उन बहु संख्यक कवियों में सिर्फ एक कवि नहीं है। वे उनमें सबसे अधिक चर्चित, पठित और आलोचित कवि हैं। इसके भी कई कारण हैं। अशोक वाजपेयी भारतीय कला परिदृश्य में संस्कृतिकर्मी के रूप में जाने जाते हैं। साहित्य और कविता को लेकर जितने नए विचार आज उपलब्ध हैं उन्हें नए सिरे से तराशने का कार्य अशोक वाजपेयी ने कई मंचों से किया है। अतः समकालीन कविता के केन्द्र में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

जिस लोक की बात कही गयी है उसके आधार पर अशोक वाजपेयी की कविता को देखें तो पता चलेगा कि वे एक भारतीय मध्यवर्गीय कस्बाई मानसिकता को लोक के रूप में रचनेवाले हैं। प्रश्न यह है कि इसका क्या महत्व है कविता में।

यह सही है कि मध्यवर्गीय कस्बाई मानसिकता कारक शक्ति तो है अशोक वाजपेयी की कविता केलिए। पर यह मध्यवर्गीय जीवन के अंकन तक सीमित नहीं है। वास्तव में संबंधों को लेकर उनकी कविता शुरु होती है। याने रिश्तों की बात को लेकर। इस प्रकरण में कवि ने घर-परिवार के सरल सी लगी वस्तुओं और बिछुडे हुए जनों की याद करते नज़र आते हैं। लेकिन कवि केलिए यह सब निरी स्मृतियाँ या वस्तुएँ नहीं हैं। कविता की यात्रा इन्हीं बिंदुओं से शुरु होती हैं। माँ की स्मृति एक बेटे की गृहातुरता भर नहीं हैं। वह अपने आप में जीवन का विस्तार पाती है। वैविध्यमय जीवन के बीच माँ की यह स्मृति, अपनी सीमित रफ्तार के साथ ही सही, अनेकविध मायने रखती नज़र आती है। अशोक वाजपेयी की कविता में माँ अब नहीं है। लेकिन कविता निरंतर यह भी बताती है की अब भी माँ हैं। यहाँ पर भी गृहातुरता से उत्पन्न मानसिक संघर्ष नहीं है जिसने कविता में भावुक स्तर पर स्थान अर्जित कर लिया हो। माँ की स्मृति का रहना और न रहना अशोक वाजपेयी की कविता का लोक भी है और एक गंभीर मानवीय स्थिति भी। यहाँ पर आस-पडोस का लोक वैश्वविक आधार गृहण करता प्रतीत होता हैं। इसी बिन्दू का अगला चरण जब वे अपने कलाकार-मित्रों पर - कुमार गंधर्व, मल्लिकार्जुन मंसूर स्वामिनाथन, रज़ा - कविताएँ लिखते हैं और कविता के ज़रिए अपने मित्रों को कविता में साक्षात्कृत करते हैं तो बिछुडे मित्रों की यह याद भर नहीं है। स्मृति और यथार्थ का

घुलमिल जाना अशोक वाजपेयी की कविता केलिए एक नया स्पेस सृजित करता है।

अपने समकालीन कवियों की तरह अशोक वाजपेयी ने भी सामाजिकता को यथोचित स्थान कविता में दिया है। इस प्रकरण में यह भी ध्यातव्य है कि यथार्थ की तात्कालिकता पर उन्होंने कम कविताएँ लिखी हैं। लेकिन सामाजिक ऊँच-नीच, मूल्य विघटन, संस्कृतिक गिरावट-आदि पर उनकी कविताएँ मिलती हैं। लेकिन ऐसी कविताओं में वे अपने लोक को केन्द्र में रखते हैं। उसी प्रकार मृत्यु पर कविता लिखते समय, मृत्यु का भय, उसका आतंक, उसके द्वारा सृजित अकेलापन इत्यादि भले की अंकित हो, मृत्यु से बढ़कर जीवन को परिभाषित करने की इच्छा उनमें अधिक दिखायी देती है। जीवन की अर्थवत्ता मृत्यु में देखा गया है। इस कारण से अन्य कवियों की तुलना में अशोक वाजपेयी की कविता में नव-आध्यात्मिकता की धड़कन सुनने को मिलती है। लेकिन यह धार्मिक नहीं हैं। यह ईश्वरीय नहीं हैं। यह मानवीय है। यह अयथार्थ नहीं हैं। बल्कि एक आंतरिक यथार्थ है। यह स्वप्न नहीं हैं। बल्कि आंतरिक यथार्थ है। इस तरह आध्यात्मिकता को नयी मानवीयता से ओतप्रोत करके जब अशोक वाजपेयी कविता प्रस्तुत करते हैं तो वे निरी मृत्यु संबंधी या तथाकथित दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग करनेवाली कविताएँ नहीं हैं। मृत्यु से उत्पन्न अनुपस्थिति की समस्त मानवीय उद्‌गारों को उनकी कविताएं

अभिव्यंजित करती हैं। वे एक नया अध्यात्म भी इसके साथ सृजित करते हैं। जब अशोक वाजपेयी कहते हैं कि "भाषा ही मेरा अध्यात्म है' तो उसके बहुआयामी अर्थ ढूँढ़े जा सकते हैं।

अशोक-वाजपेयी की रचनात्मकता में कविता लेखन ही सांस्कृतिक विमर्श है। कविता और सांस्कृतिक विमर्श के बीच कोई विशेष दूरी नहीं है। कविता का इस तरह सांस्कृतिक कार्य का अभिन्न अंग बनना कविता की विशिष्टता है और साथ ही कविता का पवित्र होना भी है। इस तरह की एक विशेष दृष्टि के रहते अशोक वाजपेयी की कविता अपने लोक की सीमा को पार कर जाती हैं। लेकिन यह उल्लंघन लोक का निषेध नहीं है

इस प्रकरण में इस शोध विषय से संबंधित तथा अशोक वाजपेयी की कविता से संबंधित एक प्रमुख प्रश्न उठ खडा होता है और वह है, अशोक वाजपेयी की कविता का क्या अवदान है?

जीवन यथार्थ अशोक वाजपेयी की कविता का प्रमुख पक्ष है एकदम। परिचित सामान्य सिद्ध करने लायक जीवन परिदृश्य को वे प्रमुखता देते हैं जिन्हें कविता के वस्तुसत्य में परिणत कर देते हैं। उन्हीं वस्तुसत्यों के स्तापत्य से ही उनकी कविता विकास पाती है। अन्य कवियों से अन्तर यही है कि यथार्थ की निपट यथास्थिति तक उनकी कविता सीमित नहीं होती है। जीवन यथार्थ की प्रस्तुति में से

पूरी तरह से भारतीय भावनाओं को ही अपनी अगाधता में सुरक्षित रखते हैं। कविता के विकास में भी इन्हीं भावनाओं का वलयित होना प्रमुख है।

समकालीन कविता में अशोक वाजपेयी एक मात्र कवि हैं जिन्होंने कविता को अन्य ललित कलाओं से मिलाया विशेष रूप से चित्रकला और संगीत से। कविता का यह अंदरूनी विकास सचमुच एक प्रीतिप्रद तथ्य है। इस कारण से उनकी कविताएँ वाचन की गंभीरता की माँग निरंतर करती हैं तथा कविता के समस्त कारक तत्व समग्रता में ही पहचाने जा सकते हैं, एक एक को अलग करके नहीं है।

अशोक वाजपेयी ने कविता को जीवन की उच्चतम स्थिति के साथ जोड़ा है। जीवन के इतने गंभीर प्रश्नों के साथ अशोक वाजपेयी की कविता जूझती नज़र आती है कि कविता की गंभीरता अपने आप में एक संस्कृति कर्म में परिवर्तित होती है।

लोक, देशीयता और वैश्वविकता का संतुलित समन्वय अशोक वेजपेयी ने अपनी कविताओ में किया है। पर यह स्थिति कविता में आरोपित नहीं है।

पारिस्थितिकी संवेदना (इको सेंसिबिलिटी) के कई सूक्ष्म स्थितियाँ उनकी कविताओं को गंभीर वाचन के वृत्त में ले चलती हैं। ईको बिंबो से भरपूर उनकी कविताओं की कई प्रकार के शोध संभावनाएँ अब भी खुली पड़ी हैं।

अशोक वाजपेयी की कविता जीवन और दर्शन के लोक और वैश्विकता की, कला और जीवन की तथा हमारे आस पड़ोस की हल्की और गंभीर स्थितियों की कलात्मक अभिव्यक्ति है।

हिन्दीं में रचे जाने के बावजूद अशोक वाजपेयी की कविता भारतीय स्वत्व को सुरक्षित रखती है। घर-परिवार के संदर्भ में लिखी गयी कविताएँ हो या विदेशी संदर्भ पर रचित। जीवन को लेकर, मूल्यों को लेकर, अपने होने को लेकर, अपने न होने को लेकर, सच को लेकर और सहस्थिति को लेकर अशोक वाजपेयी की कविता एक गहन संघर्ष का अनुभव करती नज़र आ रही है। इसके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक या दार्शनिक ग्रहण ढूँढ़ पाना आसान है। लेकिन उनके साथ अशोक वाजपेयी एक भारतीय परिपार्श्व भी रेखांकित करते हैं।

.....🕮.....

# सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## कविता संग्रह


1. शहर अव भी संभावना है - अशोक वाजपेयी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 196

2. एक पतंग अनंत में - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1984

3. अगर इतने से - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र.सं. 1986

4. तत्पुरुष - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1989

| | | | |
|---|---|---|---|
| 5. | कहीं नहीं वहीं | - | अशोक वाजपेयी<br>राजकमल प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1991 |
| 6. | बहुरि अकेला | - | अशोक वाजपेयी<br>संस्कृति प्रतिष्ठान<br>नई दिल्ली<br>प्र.सं. 1994 |
| 7. | अवन्यों | - | अशोक वाजपेयी<br>राजकमल प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1996 |
| 8. | अभी कुछ और | - | अशोक वाजपेयी<br>प्रवीणा प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1998 |
| 9. | समय के पास समय | - | अशोक वाजपेयी<br>राजकमल प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2000 |
| 10. | इबारत से गिरी मात्राएँ | - | अशोक वाजपेयी<br>वाग्देव प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2004 |

**कविता संचयन**


11. घास में दुबका आकाश - अशोक वाजपेयी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1994

12. थोड़ी सी जगह - अशोक वाजपेयी
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1994

13. तिनका तिनका (भाग 1, 2) - अशोक वाजपेयी
प्रवीणा प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1996

14. जो नहीं नहीं - अशोक वाजपेयी
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1996

15. आधुनिक हिन्दी 2001 - हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग
प्र. सं. 2001

16. चुनी हुई कविताएँ - सं. मदन सोनी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 2001

17. उजाला एक मन्दिर बनाता है - अशोक वाजपेयी
राजपाल एंड सन्स
नई दिल्ली
प्र. सं. 2002

18. पुरखों की परछी में धूप - अशोक वाजपेयी
मेधा बुक्स, नई दिल्ली
प्र. सं. 2003

**आलोचनात्मक ग्रन्थ**

19. फिलहाल - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1970

20. कुछ पूर्वग्रह - अशोक वाजपेयी
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1984

21. कविता का जनपद - सं. अशोक वाजपेयी
प्र. सं. 1992

22. कविता का गल्प - अशोक वाजपेयी
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1996

| | | | |
|---|---|---|---|
| 23. | कला विनोद | - | स. अशोक वाजपेयी<br>नेशनल पब्लिशिंग हाउस<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1982 |
| 24. | सीढियाँ शुरू हो गयी है | - | अशोक वाजपेयी<br>वाणी प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1996 |
| 25. | कवि कह गया है | - | अशोक वाजपेयी<br>भारतीय ज्ञानपीठ<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1998 |
| 26. | कभी कभार | - | अशोक वाजपेयी<br>वाणी प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2000 |
| 27. | पाव भर जीरे में ब्रह्मभोज | - | अशोक वाजपेयी<br>राधाकृष्ण प्रकाश<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2003 |
| 28. | आत्मा का ताप | - | अशोक वाजपेयी<br>राधाकृष्ण प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2004 |

## अन्य आलोचनात्मक ग्रन्थ

| | | | |
|---|---|---|---|
| 29. | अन्न है मेरे शब्द | - | एकान्त श्रीवास्तव<br>आधार प्रकाशन<br>हरियाना, प्र.सं. 99 |
| 30. | अतिक्रमण | - | कुमार अंबुज<br>राधाकृष्ण प्रकाशन<br>नई दिल्ली<br>प्र. सं. 2002 |
| 31. | अनुभव का भव | - | नन्दकिशोर आचार्य<br>वाग्देवी प्रकाशन<br>बीकाने<br>प्र. सं. 1994 |
| 32. | अशोक वाजपेयी पाठ कुपाठ | - | स. सुधीश पचौरी<br>प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1999 |
| 33. | आलोचना का पक्ष | - | रमेशचन्द्र शाह<br>वाग्देवी प्रकाशन<br>बीकानेर<br>प्र. सं. 1998 |
| 34. | आलोचना की छवियाँ | - | व्योतिष जोशी<br>वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली<br>प्र. सं. 1996 |

35. उत्तराधुनिक साहित्यिक विमर्श - सुधीश पचौरी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र. सं. 1996

36. एक जन्म में सब कुछ - अनीता वर्मा
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 2003

37. कविता और समय - अरुण कमल
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1999

38. कविता का अर्थात - परमानन्द श्रीवास्तव
आधार प्रकाशन, पंचकूला
प्र. सं. 1999

39. कविता का यथार्थ - सं. डॉ. ए. अरविन्दाक्षन
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विश्वविद्यालय
प्र. सं. 2003

40. दुश्चक्र में स्रष्टा - वीरेन डंगवाल
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 2002

41. दूसरे शब्दों में - सं. निर्मल वर्मा
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्र.सं. 1997

42. मेरे साक्षात्कार - अशोक वाजपेयी
किताबघर प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1998

43. विषयान्तर - मदन सोनी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1995

44. संवादों के सिलसिले - डॉ. संतोष कुमार
अमर प्रकाशन
प्र. सं. 2000

45. सर्जक का मन - नन्दकिशोर आचार्य
वाग्देवी प्रकाशन
बीकानेर, 1989

46. समकालीन कविता प्रमुख प्रवृतियाँ डॉ. रामकली सराफ
विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी
प्र. सं. 1997

47. समकालीन कविता का व्याकरण - परमानंद श्रीवास्तव
शुभदा प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1980

48. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ. अरविंदाक्षन
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली, प्र. सं.

49. समकालीन हिन्दी कविता - परमानंद श्रीवास्तव
साहित्य अकादमी प्रकाशन
नई दिल्ली
प्र. सं. 1990

50. समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका स. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय
डॉ. मजुल उपाध्याय
दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया
लिमिटेड, प्र. सं. 1976

51. समकालीन हिन्दी कविता विभिन्न परिदृश्य - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
राधाकृष्ण प्रकाशन
नई दिल्ली - 1995

52. साहित्य का स्वभाव - नन्दकिशोर आचार्य
वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
प्र. सं. 2001

**पत्रिकाएँ**


| | | |
|---|---|---|
| आलोचना | - | अप्रैल - जून, 1989 |
| आलोचना | - | जनवरी - मार्च 2003 (कविता का भविष्य - एक) |
| आलोचना | - | अप्रैल - जून, 2003 (कविता का भविष्य-दो) |
| ओर | - | जुलाई-सितम्बर, 1991 (काव्यभाषा विशेषांक) |
| कथादेश | - | जुलाई 2001 |
| दस्तावेज़ | - | 58, जनवरी-मार्च, 1993 |
| दस्तावेज | - | 86, जनवरी - मार्च, 2000 |
| पल-प्रतिपल | - | मार्च - जून, 2004 |
| मधुमती - | - | जुलाई, 2001 |
| वर्तमान साहित्य | - | अप्रैल - मई, 1992 (कविता विशेषांक) |
| वागर्थ | - | जून, 2002 |
| समास-एक | - | सितम्बर 1992 |
| समीक्षा | - | जुलाई - सितम्बर, 1996 |
| समीक्षा | - | जुलाई - सितम्बर, 1998 |
| समीक्षा | - | अप्रैल - जून, 2000 |
| साक्षात्कार | - | 62-63, फरवरी, 1985 |
| साक्षात्कार | - | जनवरी - मार्च, 1995 (अशोक वाजपेयी पर एकाग्र) |
| साक्षात्कार | - | अक्तूबर, 1997 |